कैसे-कैसे सच

कैसे-कैसे सच

विमल मित्र

कैसे-कैसे सच

विमल मित्र

विशिष्ट साहित्यसेवी
बन्धुवर
श्री रामेश्वर प्रसाद गुरु को—
सादर समर्पित
जिनका अनुपम स्नेह मेरे जीवन
की अनमोल धरोहर बन चुका है

अपने लेखक-जीवन में मैंने इतने आदमी देखे हैं और इतनी घटनाओं का मैं साक्षी रहा हूं कि अगर मैं उन्हें लिखने बैठूं तो एक जन्म मे तो हर्गिज़ पूरा नहीं कर सकूंगा और एक सौ उपन्यास लिखने पर भी वे घटनाएं शेष नहीं होंगी।

प्रत्येक कहानी का एक आरम्भ होता है, एक मध्य और एक अन्त। अधिकांश कहानियों की शुरुआत बड़ी दिलचस्प होती है, पर आखिर तक पहुंचते-पहुंचते उनका क्रम टूट जाता है। बहुत-सी कहानियों के अन्त में कोई क्लाईमैक्स ही नहीं मिलता। लेकिन जिस कहानी की शुरूआत भी दिलचस्प होती है और जिसका अन्त भी खूबसूरत होता है—वही कहानी पाठकों का मन छू पाती है।

किन्तु शुरू से आखिर तक किसी कहानी या उपन्यास को दिलचस्प बनाने के लिए काफी समय देने की ज़रूरत होती है। वह समय कौन देता है? बंगाल में पूजा-विशेषांकों के लिए उपन्यास लिखने के लिए सम्पादक-गण पर्याप्त समय नहीं देते। यह उपन्यास भी पूजा-विशेषांक के लिए सम्पादक के तकादे पर लिखा गया है। उस पर मज़ा यह कि मेरे दिमाग मे उपन्यास का कोई प्लाट था ही नहीं। इसीलिए मैंने अपने एक वकील-मित्र के पास जाकर उससे अपनी समस्या बताई।

मेरी समस्या सुनकर मेरे मित्र ने कहा—क्यों, तुम्हारी वह मिठू दीदी जो है, उसी के बारे में लिखो न। उसका चरित्र तो बड़ा ही अद्‌भुत था।

मैंने कहा—उसे तो मैंने कभी का लिख डाला है···।

मेरे दोस्त ने फिर कहा—तो फिर पटेश्वरी बहू रानी? वही, तुम्हारे विद्यासागर कॉलेज में पढने के समय···!

मैंने हंसते-हंसते कहा—उसके बारे में भी लिख डाला है भाई। मे
उपन्यास 'साहब बीवी गुलाम' अगर तुम पढ़ते, तो वह चरित्र तुम्हें व
मिल जाता···

तब मेरे दोस्त ने कहा— तो फिर तुम्हारे गांव की उस नयनतारा
चरित्र? अरे उसी चौधरी-वाड़ी की कहानी, जिसमें स्वयं गृहस्वा
अपनी पुत्रवधू के कमरे में रात के अंधेरे में चला जाता था। उसी के ब
में लिखो न···

मैंने कहा—लगता है कि तुमने मेरी कोई भी किताब पढ़ी नहीं। मे
किताब 'मुजरिम हाजिर' में ही तुम्हें वह चरित्र मिल जाएगा।

मेरे दोस्त ने पूछा—तो फिर क्या करोगे?

मैंने कहा—क्या करूं, यह तुम ही बताओ।

मेरा दोस्त काफी देर तक सोच-विचार में डूबा रहा।

आखिर उसने कहा—आज रहने दो। देखता हूं कि कल मैं तुम्हें क
कहानी दे पाता हूं कि नहीं।

यह कहकर मेरा दोस्त चला गया।

□

मेरे जीवन में ऐसा कई बार हुआ है। इसके लिए बेशक और कोई दूस
आदमी जिम्मेवार नहीं, जिम्मेवार खुद मैं ही हूं।

बहुत-से लोग समझते हैं कि जब मैंने इतनी मोटी-मोटी किताबें लि
डाली हैं तो फिर शायद कलम लेकर बैठने पर ही मेरी कलम से लेख
धारा प्रवाहित होने लगेगी।

लेकिन दरअसल यह बात सही नहीं है।

यह तो कोई जानता नहीं कि मेरी इन किताबों के पीछे किन अमा

पिक यन्त्रणाओ का इतिहास छिपा हुआ है ! दूसरे लोग जब सभा-समितियों में जाकर फूलो की माला गले मे डालकर आनन्द मनाते हैं, उस समय मुझे विश्राम नही होता। मेरे मन-मस्तिष्क मे तब कहानी को लेकर भारी यन्त्रणा होती रहती है। लोगो ने मुझे जितना प्यार दिया है, उसकी दस-गुनी तकलीफें भी दी हैं उन्होने।

जिन्होने मुझसे जोर-जबर्दस्ती लिखवाया है, उन्होंने हमेशा स्नेहवश ही लिखवाया हो, ऐसी बात नही। लेकिन इसका परिणाम उल्टा हुआ है। वह सब लिखकर ही मैंने लोगो का प्यार पाया है। उसके साथ दस-गुना आघात पाने पर भी जन-साधारण के उस प्यार को ही मैंने अधिक प्रमुखता दी है।

किन्तु उपन्यास लिखते-लिखते भला अपने बारे मे इतनी बातें मैं आखिर क्यों लिख रहा हू ?

कह सकते हैं कि यह भी कहानी की एक तरह की भूमिका ही है···।

गीत गाने के पहले जैसे गायक आलाप करता है तथा परिणाम के पहले जैसे पूर्वराग की रीति है···यह भी बहुत कुछ वैसा ही है।

मैंने अपने जिस दोस्त का जिक्र किया है, वह बीच-बीच मे मुझसे कहा करता—तुम खुद तो बहुत कम बोलने वाले हो। तो फिर तुम अपनी रचनाओ मे इतने बातूनी क्यों बन जाते हो ?

मैं जवाब देता—इसीलिए कि अपने वास्तविक जीवन मे मैं बहुत कम बोलता हू···।

मेरा दोस्त कहता—तुम्हारी बात समझ मे नही आई।

मैं विस्तारपूर्वक समझाते हुए कहता—फूलो के गुच्छे मे क्या सिर्फ फूल ही रहते हैं, और कुछ भी नही ? तुम अगर भलि-भाति लक्ष्य करो तो देख पाओगे कि फूलो के गुच्छे मे जितने फूल रहते हैं, उससे पाच-गुना अधिक रहते हैं देवदारु के पत्ते। उन पत्तों से फूलो का सौन्दर्य घटता है या

है, तुम्हीं बताओ !

दोस्त कहता—हम लोग इतना समझते नहीं भाई। हमारा कहना है कि तुम्हें जो कुछ कहना हो, झट-पट कह डालो। हम भी झट-पट लें…। बस, झंझट खत्म हो !

मैं कहता—तब तो कहानी लिखना बड़ा ही आसान काम हो जाता। तुम्हारी भी जान बचती और मेरी भी।

दोस्त कहता—सो तुम चाहे जो कहो। मैं तो भाई साहित्य-वाहित्य कुछ समझता नहीं। मैं तो जासूसी कहानी पढ़ना पसन्द करता हूं और उसे ही पढ़ता हूं।

सिर्फ मेरे इस दोस्त की ही बात नहीं है, पृथ्वी पर इस तरह के पाठकों की संख्या नगण्य नहीं। उनके पास मन जरूर है। लेकिन मनन नाम की जो चीज होती है, वह उनके पास नहीं। और यही वजह है कि जासूसी कहानियों के पाठकों की संख्या भी कम नहीं है।

कहानी लिखने के पहले उसका अस्तित्व लेखक के मस्तिष्क में छि… रहता है। वह अस्तित्व निश्चय ही बड़ा सूक्ष्म होता है, लेकिन सर्व… जाग्रत और भासमान रहने वाला। मनुष्य के अगोचर में ही उसका नि… है। उसे देखा नहीं जा सकता। उसे रूपायित करने के लिए प्रयास क… पड़ता है। विश्राम, निद्रा और विलास को तिलांजलि देनी पड़ती है। तरह साधना द्वारा भी अशरीरी कहानी शारीरिक-रूप धारण करती…

लेकिन बहुधा कोई लेखक इस साधना के लिए पर्याप्त समय दे… चाहता। बाह्य जगत् की ओर से बाधाएं आती हैं। तो फिर क… सम्पादक या प्रकाशक हाथ में लट्ठ लेकर हाज़िर हो जाते हैं।

वे कहते हैं—कहानी दीजिए।

उनसे यदि कहा जाए कि समय चाहिए, तो वे नाराज़ हो…

कहते हैं—यह सब हम कुछ भी नहीं जानते। समय देने की हमें जरूरत भी नहीं। हमें तो सिर्फ कहानी चाहिए। हमें अपनी कहानी दीजिए…।

यह सतयुग तो है नहीं कि मैं क्रौंच-मिथुन की पीड़ा देखकर अधीर हो जाऊं और कलम की नोक से कल-कल करती कहानी बह निकले! नहीं, यह तो होने का नहीं। यह कलियुग है। कलियुग में क्रौंच-मिथुन के दर्शन हो ही नहीं सकते। और वाल्मीकि? वाल्मीकि तो इस युग में अदृश्य ही हो चुके हैं।

इस तरह की हालत में मैं और क्या करता? इसीलिए मुझे अपने दोस्त के दरवाजे पर जाना पड़ा।

मेरे इस दोस्त को अगर लंगोटिया यार कहा जाए तो कुछ गलत नहीं होगा। कभी हम लोग साथ-साथ पढ़ा करते थे।

उस समय मेरा यह दोस्त मालदा में रहा करता था। वह अपने चाचा जी के घर में ही बड़ा हुआ है। मैं भी उस समय कुछ वर्षों तक मालदा के स्कूल में ही पढ़ा करता था।

उसी समय अपने इस दोस्त जहर के साथ मेरा परिचय हुआ था।

जहर के पिताजी जहर के बचपन में ही मर चुके थे। विधवा मां थी। जहर के चाचा ने अपनी विधवा भाभी और भतीजे को अपने घर में आश्रय दिया था। उसके बदले जहर को घर का सारा काम-काज करना पड़ता। घर के सभी लोगों की फरमाइश उसे पूरी करनी होती।

जहर जानता था कि वे सब गरीब हैं, चाचा के टुकड़ों पर पलने वाले। इसीलिए वह जी-जान लगाकर पढ़ने-लिखने की कोशिश करता।

वह जानता था कि पढ़ाई में अव्वल आने पर ही उसकी और उसकी विधवा मां की इज्जत बचेगी। उस समय से ही मैंने देखा है कि वह हम लोगों की तरह न पान खाता और न ही चाय या सिगरेट पीता।

वह कहता—नहीं भाई, इन चीज़ों का नशा-वशा करना हमारे जैसे लड़के के लिए ठीक नहीं। मैं तो यूं ही गरीब हूं और उसके ऊपर यदि मैं नशे का गुलाम भी बन जाऊंगा तो कौन मेरे नशे का खर्च जुटा देगा? इसीलिए तो मैं उस रास्ते में जाता ही नहीं, भाई।

हम लोग जहर की हालत से वाकिफ थे। इसीलिए इस मामले में हमने उसे कभी भी तंग नहीं किया।

उसके बाद मैं मालदा छोड़कर अपने पिताजी के साथ कलकत्ता चला आया। पिताजी के दफ्तर के बदल जाने के साथ ही मेरा स्कूल भी बदल गया। उसके बाद से जहर के साथ मेरा सम्पर्क-सूत्र टूट गया था।

उसके बाद क्या से क्या हो गया, इसका मुझे कुछ भी ख्याल नहीं रहा। जो इस संसार का सृष्टिकर्त्ता है, हम लोग उसके हाथ की कठपुतलियां हैं। सच पूछिए तो हमारी कोई क्षमता है ही नहीं। मैं तो समझता हूं कि पेड़ का एक पत्ता तक उस सर्व-शक्तिमान की इच्छा के बिना हिलता नहीं। मैं कह नहीं सकता कि मेरे ऐसा कहने पर कोई मुझे भाग्यवादी कहकर बदनाम करेगा या नहीं! लेकिन अगर कोई मुझे बदनाम करे, तो भी मैं अपने विश्वास से तिल-भर भी टलूंगा नहीं।

हमारे देश में भर्तृहरि नाम के एक ऋषि-कवि थे। उन्होंने कहा है—कोई तुम्हें साधु बोलेगा या मूर्ख। सभी तुम्हें नाना प्रकार से विभ्रान्त करने की कोशिश करेंगे। लेकिन तुम किसी की भी तरफ ध्यान मत देना, सिर्फ एकाग्र मन से अपना काम करते जाना।

यह बात कितनी सच है, उसे मैं अपने जीवन में जिस तरह समझ सका हूं, उस तरह और कभी भी कोई दूसरी बात मैंने नहीं समझी।

जब आखिरकार मेरा एक ठौर-ठिकाना हुआ, तब एक दिन रास्ते में जहर के साथ मुलाकात हो गई। मैंने तो उसे पहचान लिया था, लेकिन वह मुझे

पहचान नही पाया।

मैंने पूछा—तुम जहर हो न ?

जहर मेरी ओर देख कर कुछ देर तक अवाक् रह गया।

फिर वह कहने लगा— भाई, मैं तो आपको ठीक-ठीक पहचान नही पाया।

लेकिन जैसे ही मैंने अपना नाम बताया, जहर ने खुशी के मारे मुझे गले से लगा लिया···।

इसके बाद उसे मैं अपने घर ले आया था। हमारा परिचय फिर से घनिष्ठ हो उठा। हम लोग फिर पहले की भांति एकाकार हो गए। और फिर उसके बाद से हम लोग नियमित रूप से मिलने-जुलने लगे।

मेरा जो पेशा है, उसमें लोगों के साथ मिलना-जुलना और अड्डेबाजी करना अपरिहार्य है। अड्डेबाजी किए बिना भी लेखक जरूर बना जा सकता है; पर सुलेखक बना जा सकता है या नहीं, इस पर मुझे सन्देह है।

मैं एक-एक किताब लिखता और उसके साथ सलाह-मशवरा करता। वह एक-एक पृष्ठ सुनता और अपना मतामत व्यक्त करता।

कभी वह कहता—यह पृष्ठ ठीक नहीं हुआ।

मैं पूछता—क्यों ?

जहर कहता—इस तरह कभी लड़के-लड़की में प्रेम नहीं होता। इस पृष्ठ को तुम फिर से लिखो।

उसकी राय सुनने के बाद कभी मैं अपना लेखन बदल देता और कभी-कभी नहीं भी बदलता।

जहर मेरा ऐसा दोस्त है जो साहित्य के बारे में कुछ समझता ही नहीं। जो आदमी साहित्य के बारे में कुछ समझता नहीं, उसे मैं अधिक पसन्द करता हूं। इसका कारण यह है कि उसके साथ दिल खोलकर बातें की जा सकती हैं। साहित्य बड़ी ही सूक्ष्म वस्तु है। जो आदमी साहित्य की

समझ रखता है, उसके साथ उस सूक्ष्म वस्तु की आलोचना करते वक्त मुंह से कोई अप्रिय बात निकल जाने पर तो खुद अपनी रात की नींद और दिन की शान्ति गायब हो जा सकती है।

उसके बजाय तो मेरा असाहित्यिक दोस्त ही भला है। साहित्य के बारे में अगर वह कुछ विपरीत मंतव्य भी व्यक्त करे, तो भी उससे मेरे मन पर कोई आघात नहीं पहुंचेगा।

खैर, जो भी हो···। अब जहर की ही बात कहता हूं।

जहर मुझसे प्रायः ही कहता—भई, तुम बुरा मत मानना। तुम्हारे उपन्यास में कहानी बड़ी ही धीमी चाल से आगे बढ़ती है। तुम अपनी कहानी को खूब घोंटते रहते हो। जो कुछ कहना है, उसे क्या झट-पट नहीं कह सकते ?

मैं कहता—लेकिन भाई, आदमी का जीवन भी तो धीमी चाल से चलता है। जीवन और कहानी क्या अलग-अलग हैं ?

जहर कहता—लेकिन भाई, हम तो साधारण आदमी हैं। कहानी के आखिर में क्या हुआ, यही जानने का इन्तजार करते रहते हैं। और तुम वही बात इस तरह घुमा-फिरा कर कहते हो कि हमारा धीरज जल्दी ही टूटने लगता है।

मैं कहता—देखो, सिनेमा और साहित्य में एक बुनियादी फर्क है। वह यह कि उपन्यास जितनी धीमी चाल से चलेगा, वह उतना ही उत्तम होगा। लेकिन सिनेमा जितना ही गतिसम्पन्न हो सकेगा, वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाएगा।

जहर कहता—ये सब हुईं तत्त्व की बातें। हमारे-जैसे साधारण आदमियों को यह सब जानकर कोई फायदा नहीं होगा।

जहर एक मामले में बढ़िया है। बढ़िया इसलिए कि कुछ नहीं समझने पर भी बहुत कुछ समझने का ढोंग वह नहीं किया करता है।

सो आखिरकार मुझे इसी जहर का शरण में जाना पड़ा था।

□

जहर दूसरे दिन फिर आया। मेरी समस्या की बात उसे याद थी।

जहर ने पूछा—क्या हुआ? क्या तुम्हारी समस्या का कोई हल निकला?

मैंने कहा—नही भाई। इतनी जल्दी अगर समस्या मिट जाती, तो फिक्र ही किस बात की थी? और फिर हाथ में ज्यादा समय भी नही है। ये लोग तो बस ऐन मौके पर हडबडी मचाते हैं। थोडा समय मिलता, तो कुछ सोचता भी···। ये लोग समय भी कम देंगे और बढिया रचनाएं भी मागेंगे। यह तो बहुत मुश्किल बात है। यह तो कोई बिजली का बल्ब नही है कि स्विच दबाते ही जल उठेगा। यह शायद सम्पादक और प्रकाशक का भी दोष नही है। यह दोष है इस ध्वस्त युग का ही। स्पीड, स्पीड और स्पीड···। सिर्फ स्पीड···। इसीलिए इस युग मे कोई महान् सृष्टि नही हो रही है। जो कुछ सृष्टि हो रही है उसे मध्यम दर्जे का ही कहना शायद ठीक होगा। यदि किसी महान् स्रष्टा के जन्म होने की सम्भावना हो भी, तो वह इस चक्की के पाटों के बीच पड़कर पिस जाएगा—चूर-चूर हो जाएगा।

जहर के पास यह सब समझने लायक समझ है ही नही या फिर वह कभी इन्हे समझने की इच्छा भी नही रखता। मेरी कुछ किताबो को उसने मजबूर होकर पढ़ा है, तभी उसे साहित्य के सम्बन्ध मे सामान्य ज्ञान हुआ है।

मैंने इसीलिए पूछा—क्या तुमने मेरे लिए कुछ सोचा है?

जहर ने कहा—जरूर सोचा है। कल रात बिछौने पर पड-पड़े मैं काफी देर तक तुम्हारे बारे मे ही सोचता रहा हूं। आखिरकार जब कोई

कूल-किनारा नहीं मिला तो मैंने सोचा कि अगर मैं अपनी ही कहानी तुमसे लिखवाऊं तो कैसा रहे !

मैंने पूछा—तुम्हारी कहानी का मतलब ? क्या तुम्हारी अपनी ज़िंदगी से सम्बन्धित कहानी ?

जहर ने कहा—हां···! बिलकुल पर्सनल लाइफ की कहानी। बिलकुल सच्ची घटना। न तो यह कानों से सुनी हुई कहानी है और न ही आंखों से देखी हुई। यह तो खुद मेरी आपबीती है।

मैंने कहा—सुनाओ तो, कैसी है तुम्हारी कहानी !

□

जहर कहने लगा—तुम तो जानते ही हो कि मैं अपनी विधवा मां के साथ अपने चाचा जी के घर पर उनके टुकड़ों पर पल रहा था। छोटी उम्र में पिता जी के गुज़र जाने पर अपने रिश्तेदार के घर पर विधवा मां को लेकर उनका आश्रित होकर रहना क्या चीज़ है, वह तुम सब कोई नहीं समझ सकते। पूरे साल-भर की स्कूल की फीस मेरे चाचा जी ही चुकाते। और फिर मां का और मेरे खाने और रहने का खर्च भी था ही। इस दया के विनिमय में घर का सारा काम-काज मुझे और मेरी मां को ही करना पड़ता।

मां की जो उम्र थी, उस उम्र में घर के सारे काम अपने हाथों से करना बड़ा ही तकलीफदेह था। मां की ओर देख-देखकर मुझे अपार कष्ट होता।

मां से अगर मैं यह सब बातें छेड़ता तो मां कहती—तू चुप रह तो। इस तरह की बातें मुझसे मत किया कर। कोई अगर सुन लेगा तो सर्वनाश हो जाएगा।

मां सुबह से रात के ग्यारह बजे तक रसोई करती रहती। उन्हें पल-भर का भी आराम नसीब न था। मां जो इतना परिश्रम करती थी, उसका एकमात्र स्वार्थ था मैं ही। मैं पढ-लिखकर आदमी बनू, बस यही प्रार्थना मां हमेशा भगवान से किया करती थी। मां की एकमात्र चिन्ता थी मुझे लेकर ही। मैं ही मां का सरदर्द था।

थोडी-सी भी चूक होने पर चाची मां को खरी-खोटी सुनाने में कोई कोर-कसर बाकी न रखती।

मुझे सुनकर बड़ी तकलीफ होती। मैं खुद भगवान से प्रार्थना करता—भगवन् ! तू मेरी मा का कष्ट दूर कर। मा के कष्ट अब मुझसे देखे नही जाते।

उस दिन चाची मां पर बहुत नाराज हुई थी। मैंने दूर से देखा कि मां आचल से अपने आसू पोछ रही थी। उस समय मैं और कुछ भी बोल नही पाया। रात मे मां को अकेला पाकर मैंने चुपचाप कहा—मां, चाची ने तुम्हें इतनी खरी-खोटी सुनाई और तुमने चुपचाप कान मे तेल डाले सुन लिया ? तुम कुछ भी बोल नही सकी ?

मां ने कहा—तू चुप रह तो। तू जा, अपना काम कर।

मैंने कहा—लेकिन वे सब तुम पर झूठा इल्जाम लगाएगे और तुम मुंह बन्द कर उसे सहन करती रहोगी ?

मा ने कहा—बेटा, इसमे बुरा मानना ठीक नही है ! तुम पहले बड़े तो हो लो। तू जब बडा हो जाएगा, तब मेरे सारे दु.ख अपने-आप मिट जाएगे। तेरे भविष्य के बारे में सोचकर ही मैं यह सब अपमान मुह बन्द करके सहती जा रही हू। माथे के ऊपर भगवान तो सब देख रहा है न !

मैंने कहा—नही, भगवान है ही नही। अगर भगवान होता तो क्या तुम्हे इतनी तकलीफें उठानी पडती ?

मां ने कहा—तू इतना चीखता-चिल्लाता क्यों है ? अगर कोई सुन

तो फिर तुझे लेकर मैं किसके पास जाऊंगी, वता तो ? कौन हमें सिर
ने के लिए जगह देगा ?

मैं मां का दुःख समझता था। किन्तु मुझे यह सोच-सोचकर वड़ा कष्ट
ता था कि मैं मां की किसी भी तकलीफ का प्रतिकार नहीं कर पा रहा
। मैं सोचता था कि कव मैं पढ़-लिखकर वड़ा आदमी वनूं और किस
रह मां को इस अपमान से वचाऊं ! आखिर मां की उम्र भी तो वढ़ती जा
रही थी···!

सचमुच भाई, अव मैं वड़ा हो गया हूं। अव हमारी हालत भी कुछ
ठीक हुई है। कलकत्ते में मैंने अपना मकान भी वनवा लिया है। मेरे पास
वेशुमार रुपये भी जमा हो गए हैं। लेकिन मुझे इसी वात का दुःख है कि
मां यह सव कुछ भी देख नहीं सकी। जिसके लिए इतना कष्ट करके अव
अपना मकान वनाकर आराम कर रहा हूं, वही मां अव इस संसार में नहीं
रही। यह वात सोचने पर ही मुझे वहुत तकलीफ होती है भाई। मेरी य
तकलीफ कोई भी समझ नहीं पाता। मेरी यह वात कौन समझेगा, तुम
वताओ ! मैं और किसी को भी ये वातें नहीं वताता। आज पहली दफा
वातें मैंने तुमसे कही हैं। कारण यह है कि यह घटना वताए विना
आखिर मेरी कहानी लिखोगे कैसे ?

तुम लोगों के कलकत्ता चले आने के पहले से ही वहां ये घटनाएं
थीं। तुम लोग भी यह जान नहीं पाते थे कि मुझे क्या दुःख है !
किसी को वताने लायक वात तो यह थी नहीं। मैं किसी तरह दो
में डालकर स्कूल जाता। सच पूछो तो किसी भी दिन मेरा पेट पू
नहीं था।

देखो भाई, भूख मुझे कुछ अधिक ही लगती थी। दूसरे ल
खाते, मैं उसका दुगुना खाता। मेरा पेट किसी तरह भरता ही
भी मैं अपने मुंह से कह नहीं पाता कि मां मुझे और थोड़ा भात

मां मेरी भूख के बारे में जानती थी। मां जानती थी कि मैं कुछ ज्यादा भात खाता हूं। मां रसोईघर की ओट से छिप-छिपकर देखती। लेकिन कभी भी वह मेरे पास आकर बोल नहीं पाती कि मुन्ने, तुम और थोड़ा-सा भात लोगे क्या!

चाची जी घर का काम-काज कुछ भी नहीं करतीं, पर वे चारों ओर नज़र रखतीं। कहां पानी बर्बाद हो रहा है, कौन ज्यादा भात खा रहा है और कौन चोरी कर रहा है; उस तरफ ही उनकी ज्यादा नज़र लगी रहती थी।

और फिर उनकी ज़ुबान बड़ी तेज़ थी। जिसे सामने पातीं, उसे ही जो-सो बकने लगतीं।

इसी माहौल में मेरा विद्यार्थी-जीवन बीता है भाई। एक तरफ मां की वैसी तकलीफें और उस पर रुपयों की किल्लत। स्कूल जाने पर भी चैन नहीं मिलता। मैं गरीब था, इसलिए तुम लोग भी मुझसे सीधे मुंह बात नहीं किया करते थे। मैं शर्म के मारे तुम लोगों के सामने अपनी तकलीफों की कहानी कह नहीं पाता। और फिर किस्मत ऐसी थी कि अगर मैं मन लगाकर कोई किताब पढ़ रहा होता तो उसी समय आकर चाची जी कहतीं—पाव-भर सरसों तेल ले आओ तो। सरसों तेल बिलकुल खत्म हो गया है।

मां कहतीं—वह अभी पढ़ रहा है। उसकी परीक्षा बिलकुल नज़दीक है। दो, मैं दुकान से ला देती हूं तेल।

चाची जी कहने लगतीं—यह क्या, तुम बाज़ार जाओगी? पास-पड़ोस के लोग क्या कहेंगे, ज़रा बोलो तो? लोग तो फिर मुझे ही बुरी बताएंगे। लोग बातें बनाएंगे—अपनी विधवा जेठानी को इसने बाज़ार भेज दिया है। लोगों का मुंह तो मैं बन्द नहीं कर सकती दीदी।

मां कहतीं—मुन्ना पढ़ रहा है न! उसका समय बर्बाद होगा, इसी-

लिए कह रही थी···।

चाची जी फिर तो चीख पड़तीं। कहतीं—तुम रुको तो दीदी। तुम्हारा लड़का तो पढ़-लिखकर बड़ा पण्डित बन जाएगा न? वह तो बहादुर है सिर्फ भात खाने में। वह पढ़-लिखकर बहुत निहाल कर देगा न?

मैं तब चाची जी के पास जाकर कहता—मैं अभी जा रहा हूं चाची जी। कहिए, कितना तेल लाना होगा?

चाची जी कभी भी एक बार में ज़्यादा तेल नहीं खरीदती थीं। ख़ूब ज़ोर पाव-भर या आधा पाव। इसका कारण यह था कि मां रसोई में ज़्यादा तेल खर्च न कर डाले!

और फिर सिर्फ सरसों तेल के मामले में ही नहीं, हर चीज़ के मामले में वह ऐसी ही थीं। सरसों तेल, घी, दियासलाई और मसाला—सब कुछ थोड़ी मात्रा में ही चाची जी खरीदती थीं।

चाची जी कहतीं—पैसा क्या पेड़ में उगता है? पूरे घर में कमाने वाला तो एक ही आदमी है। खून-पसीना एक कर कमाए गए पैसों को क्या यूं ही बर्बाद कर देने से घर चलेगा? तुम खुद अगर कमाती, तब तुम्हें मालूम होता।

मामूली-सी दियासलाई। दियासलाई की तीलियों तक का चाची जी हिसाब रखतीं। वे हरेक रात मां को एक तीली देतीं। उसी एक तीली से मां को दूसरे दिन सुबह चूल्हा जलाना होता। वह तीली अगर चूल्हा सुलगाते वक्त किसी कारण से बुझ गई तो बस फिर मां की शामत आ जाती। चाची जी इतना चीखतीं-चिल्लातीं कि उस दिन घर की मुंडेर पर कौए भी नहीं बैठ पाते।

इतने दुःख-दर्द की कहानी तुम्हारे पाठकों को बढ़िया लगेगी या नहीं, कह नहीं सकता। भाई, अगर तुम लोगों का साहित्य जीवन की छवि होता है तो इन सब मामूली घटनाओं को छोड़ देने पर तो फिर जीवन की बात

ही नहीं बनती। खैर, मैं नहीं जानता कि ये सब बातें तुम्हारी कहानी के काम की हैं या नहीं; फिर भी मैं इनका जिक्र करता जा रहा हूं। उपन्यास लिखने के समय तुम जो कुछ छोड़ना हो छोड़ देना और काम की चीजों का उपयोग कर लेना। मैं ठहरा असाहित्यिक आदमी। मुझे जो कुछ याद आ रहा है, सभी कुछ कहता जा रहा हूं। तुम अपनी इच्छा के अनुसार अपने काम की चीजें छांट लेना।

जो भी हो, इसी तरह दिन चाची जी की गृहस्थी की फरमाइशें पूरी करने में तथा स्कूल के मास्टरों की डांट-फटकार खाने में बीत रहे थे। लेकिन फिर भी मुझे अपनी रातों पर भरोसा था। कहा जा सकता है कि रातें ही मेरी जो कुछ भी थीं—अपनी थीं।

लेकिन बत्ती जलाकर पढ़ने का मतलब हो या पैसों की फिजूलखर्ची। फिजूलखर्ची चाची जी के लिए असहनीय थी। वे सब कुछ बर्दाश्त कर सकती थीं, लेकिन एक चीज हर्गिज नहीं। वह थी पैसों की फिजूलखर्ची। रात में जाग-जागकर पढ़ना-लिखना चाची जी की निगाह में पैसों की बर्बादी ही था।

चाची जी नाराज होकर कहतीं—बिजली शायद खूब सस्ती हो गई है न दीदी। इसीलिए बत्ती जलाकर गप्पें लड़ा रही हो? क्या बत्ती बुझाकर गप्पें नहीं लड़ा सकती? मेहनत करके अगर कमाना पड़ता, तब तुम पैसों की महिमा समझती।

हो सकता है कि उस समय मां गप्पें नहीं लड़ा रही हो, शायद वे बर्तन माजने के बारे में बातें कर रही हो। कान में आवाज आते ही चाची जी समझतीं कि मां किसी के साथ गप्प कर रही है।

मा कहती—मैं तो गप्पें नहीं लड़ा रही हूं···। कामिनी से कह रही थी कि भात की थाली पहले मांज दो।

चाची जी कहती—कामिनी पर हुक्म चलाती ही तो चलाओ।

किन बत्ती बुझाकर बात करने पर महाभारत अपवित्र तो नहीं हो जाएगा।

चाची जी की नज़रों में सभी कुछ फिज़ूलखर्ची था। बिना वजह बत्ती जलाना फिज़ूलखर्ची था, भूख लगना फिज़ूलखर्ची था और बत्ती जलाकर पढ़ना-लिखना भी फिज़ूलखर्ची ही था।

लेकिन मेरा एक सौभाग्य था इस मामले में। वह यों कि हमारे घर के ठीक सामने चबूतरे के बगल में ही एक लैम्प-पोस्ट था। घर के चबूतरे के ऊपर बैठकर लैम्प-पोस्ट की रोशनी में मैं पढ़ाई-लिखाई करता। इस तरह मैं चाची जी की डांट-फटकार से भी बचता और स्कूल में पढ़ाई-लिखाई न करने पर मास्टरों की सज़ा से भी छुटकारा पाता।

एक रात मैं उसी चबूतरे के ऊपर बैठकर लैम्प-पोस्ट की रोशनी में पढ़-लिख रहा था। उस समय मैं ग्यारहवीं क्लास का छात्र था। परीक्षा नज़दीक थी। और किसी भी तरफ मेरा ध्यान नहीं था। उस समय रात के साढ़े ग्यारह या बारह बजे होंगे। ऐसे समय में मैंने रास्ते से आती हुई एक लड़की की आवाज़ सुनी।

लड़की कह रही थी—थोड़ा सुनिए ना···।

मैंने उस ओर देखा। लड़की की उम्र कम ही थी। काफी सजी-संवरी हुई थी वह। मैंने देखा कि मेरी ओर लक्ष्य करके ही वह लड़की कह रही थी।

तब मुझे कुछ उत्सुकता हुई।

मैंने पूछा—क्या आप मुझसे कुछ कह रही हैं?

लड़की बोली—जी हां। क्या आप मेरा एक अनुरोध मान सकेंगे?

मैंने कहा—कहिए···।

लड़की बोली—मुझे बहुत डर लग रहा है। आप अगर मुझे मेहरबानी करके मेरे घर तक पहुंचा दें तो···।

मैं तो अवाक् रह गया। कहां की लड़की है, कौन है—इसका कुछ ठिकाना नहीं। कभी अपनी जिन्दगी में उसे देखा तक नहीं। और उसके ऊपर यह आधी रात!

और फिर लड़की के साथ भला कोई क्यों नहीं है? इस उम्र की लड़की अकेली आखिर अपने घर से क्यों निकली है?

मैंने कहा—मैं तो आपको ठीक पहचान नहीं पाया।

लड़की बोली—पहचानती तो मैं भी नहीं आपको। निहायत मुसीबत में पड़ गई हूं, इसीलिए आपसे मदद मांग रही हूं।

मैंने कहा—कहिए, क्या करना होगा?

लड़की बोली—मुझे क्या आप मेरे घर तक पहुंचा देंगे? सामने मैदान के पास गुण्डों का डर है। रात के वक्त उस तरफ से जाने में मुझे खूब डर लग रहा है।

मैंने पूछा—आपका घर कहां है?

लड़की ने कहा—वैद्यपाड़ा में।

नाम सुनकर मैं जगह पहचान नहीं पाया। मैंने पूछा—वैद्यपाड़ा कहां है?

लड़की बोली—वह जो बड़ा मैदान है, उसे पार करने पर जो नई कॉलोनी बनी है—उसी का नाम वैद्यपाड़ा है।

मैंने सुना था कि देश-विभाजन के बाद वहां बहुत-से नये लोगों ने आकर अपना घर बनाया था। लेकिन मैं उस तरफ पहले कभी भी गया नहीं था। बाजार में मुझसे भेंट होने पर बहुत-से नये लोगों ने बताया था कि वे वैद्यपाड़ा में रहते हैं।

मैंने पूछा—आप इतनी रात में घर से क्यों निकली थी?

लड़की ने कहा—इधर सिनेमा देखने के लिए आई थी, नाइट शो में…।

मैंने कहा—नाइट शो में सिनेमा देखने क्यों आई थीं ? तब तो आपको यह मालूम था ही कि घर लौटने में बहुत रात हो जाएगी।

लड़की ने जवाब दिया—इवनिंग शो की टिकट मिली नहीं। इसीलिए नाइट शो में पिक्चर देखनी पड़ी। उस समय मैंने सोचा था कि कोई न कोई तो वैद्यपाड़ा की तरफ जाएगा ही। लेकिन अब देख रही हूं कि उस तरफ कोई भी नहीं जा रहा है।

मैं भाई, समझ ही नहीं पाया कि क्या किया जाए ! एक अनजान लड़की के साथ आधी रात के समय जाना भारी मुसीबत की बात थी। कौन जाने किसके मन में क्या हो…!

उसके बाद हठात् मैंने देखा कि लड़की मुंह पर रूमाल रखकर सिसक-सिसककर रोने लगी।

तुम जरूर अन्दाज लगा सकते हो कि उस समय मेरे मन की अवस्था क्या थी ! उस समय तक किसी भी लड़की के साथ मेरी दोस्ती नहीं हुई थी। लड़कियों के मामले में तब तक मुझमें कोई दुर्बलता नहीं थी।

और उसके ऊपर उस आधी रात के समय एकान्त में एक लड़की मेरी सहायता चाह रही थी। और सिर्फ सहायता नहीं, सहायता नहीं मिलने पर हताश होकर मेरे सामने असहाय-सी रो रही थी; यह घटना चाहे जितनी भी रोमांचक क्यों न हो, मेरे लिए बेहद डरावनी थी।

मैं तो भाई सचमुच बहुत डर गया।

विशेष रूप से तब मुझे अपनी मां और चाचा-चाची की याद आई।

मैं सोचने लगा कि अगर वे सब कुछ देख लें तब क्या होगा ? वे सब अगर देख लें तो मेरा क्या सर्वनाश होगा, इसका मैं साफ-साफ अन्दाज़ लगा चुका था। मेरी आर्थिक अवस्था और विशेष कर मेरी मां की असहाय मूर्ति मेरी आंखों के सामने तैरने लगी।

मैंने सोचा कि उस समय अगर वैद्यपाड़ा की तरफ जाने वाला कोई

आदमी मिल जाता तो लड़की को उसके जिम्मे लगा कर मैं निश्चिन्त हो पाता। तो फिर मुझे परेशान होना नहीं पड़ता।

लेकिन भगवान को शायद यह मंजूर नहीं था।

सो मैं 'क्या करूँ'—'क्या न करूँ' की दुविधा में पड़ा हुआ था। उसी लड़की का चेहरा देखकर मुझे बहुत दया आई।

और इतने दिनों के बाद तुम्हें यह कहने में मुझे संकोच नहीं कि लड़की की तरफ अच्छी तरह देखने पर मुझे प्रतीत हुआ कि वह बहुत सुन्दर थी।

या फिर यह भी हो सकता है कि वह आधी रात के अँधेरे-उजाले की माया थी। उस माया के जाल में फँसकर कितने ही साधु-सन्यासियों की भी मति मारी जाती है। शायद मेरी हालत ठीक वैसी ही थी।

बंकिमचन्द्र जी के उपन्यास 'कपाल कुण्डला' में पढ़ा था कि राह खोकर जब उपन्यास का नायक नवकुमार हताश हो गया था, उस समय हठात् कपाल कुण्डला से उसकी भेंट हुई थी। उस समय नायक नवकुमार के मन में जैसी अनुभूति हुई थी, मुझे भी ठीक वैसी ही अनुभूति हुई उस लड़की को देखकर। ठीक कपाल कुण्डला की तरह वह लड़की भी मुझे आकर्षित करने लगी। मुझे ऐसा लगा कि वह लड़की अगर मुझे मरने के लिए कहे, तो मैं मरने के लिए भी सहर्ष प्रस्तुत हो जाऊंगा।

तो फिर जानते हो मैंने क्या किया? मैं उससे एक बात पूछ बैठा। मैं उससे पूछना चाहता था, ऐसी बात नहीं। पर हठात् बात मेरे मुँह से निकल ही गई।

मैंने पूछा—आपका नाम क्या है?

लड़की ने कहा—मेरा नाम सन्ध्या भादुड़ी है। आप मुझे 'तुम' कहकर सम्बोधित कर सकते हैं।

लेकिन क्या मामूली-से चन्द मिनटों के परिचय में किसीको 'तुम' कहा

…ा है ?

…ा कहा—आपके साथ तो मेरा अधिक परिचय हुआ नहीं । इतने …मय में मैं आपको 'तुम' कैसे कह सकता हूं ? और फिर आपकी उम्र मेरी उम्र के समान ही लग रही है ।

वह लड़की हठात् वोल उठी—मैं उम्र में आपसे वहुत छोटी हूं । आप … मुझे 'तुम' कहकर पुकारें तो इसमें वुरा मानने की कोई वात ही नहीं …

… इतनी निर्भरता पाने पर मैं कुछ आश्वस्त हुआ । मैंने सोचा कि एक …ड़की की थोड़ी-सी मदद कर देने में मेरा नुकसान ही क्या है ? इसके लिए …रे पैसे तो कुछ खर्च हो नहीं रहे हैं ।

मैंने कहा— अच्छा, तुम रुको । मैं अभी तुरन्त आता हूं ।

यह कहकर मैंने घर के सदर दरवाज़े का ताला वन्द किया और मैं वाहर रास्ते पर निकल आया ।

मैंने कहा—चलो··· ।

रात अन्धेरी थी । मेरी परीक्षा विलकुल नज़दीक है, यह वात और मुझे फिर याद रही ही नहीं । चाचा-चाची को अगर पता चल गया तो वे क्या कहेंगे, यह भी याद न रहा । यही नहीं, ताज्जुव की वात है कि मेरे सम्वन्ध में मेरी मां की आशा-आकांक्षाओं की वात और मां के ऊपर हो रहे चाची के अत्याचारों की वात भी उस समय मुझे याद न रही । … लड़की के साथ-साथ चलने लगा । शुरू में मैंने ही वात छेड़ी ।

मैंने कहा—इतनी रात में सिनेमा देखने के लिए आना किन्तु ठी… नहीं हुआ । आजकल का ज़माना वहुत खराव है··· ।

संध्या भादुड़ी ने कहा—मैं तो शाम को ही पिक्चर देखने आई … पर टिकट नहीं मिलने की वजह से मुझे नाइट शो में पिक्चर देखनी प…

मैंने कहा—तो इतना समय तुमने कहां विताया ?

संध्या बोली—चाय की दुकान पर सिर्फ एक कप चाय लेकर बैठी थी।

मैंने कहा—तुम्हें तो सिनेमा देखने का बड़ा शौक है।

संध्या बोली—हां, आप ठीक कहते हैं। सिनेमा देखना मुझे बहुत अच्छा लगता है। क्या आप सिनेमा पसन्द नहीं करते ?

मैंने तब तक कोई सिनेमा नहीं देखा था। और फिर सिनेमा देखने के लिए मेरी जेब में पैसे भी तो नहीं रहते थे। हम लोगों के जमाने में हमारे गुरुजन सिनेमा देखने के मामले में हमें हमेशा हतोत्साह किया करते थे।

इसीलिए मैंने कहा—सिनेमा देखना मुझे वैसे ज्यादा अच्छा नहीं लगता है।

संध्या ने कहा—यह क्या ? आप सिनेमा नहीं देखते ? लगता है कि आप भी मेरे पिता जी की तरह हैं। मेरे पिता जी को भी सिनेमा के नाम से ही चिढ़ है।

मैंने पूछा—अगर तुम्हारे पिताजी को सिनेमा से इतनी नफरत है तो फिर तुम सिनेमा देखने कैसे चली आई हो ? यह बात अगर तुम्हारे पिता जी को मालूम हो जाएगी, तो क्या वे नाराज नहीं होंगे ?

संध्या बोली—पिता जी को मालूम होगा, तब न ! मैंने मां से कह दिया है कि पिता जी अगर मेरे बारे में पूछें तो कह देना कि मैं सो गई हूं।

मैंने कहा – तुम्हारी मां तो बहुत अच्छी मालूम होती है।

संध्या बोली—मेरी अपनी मां नहीं है। सौतेली है।

मैं और भी अवाक् रह गया। अवाक् रह गया उस लड़की की सरलता देखकर। मैं तो उसके लिए अपरिचित आदमी था, उसके बावजूद मेरे सामने अपनी पारिवारिक बातें बताने में उसे संकोच नहीं हो रहा था।

मैंने पूछा—तुम्हारी अपनी मां कब चल बसी ?

संध्या का चेहरा जाने कैसा करुण हो उठा।

वह कहने लगी—मैंने अपनी मां को देखा ही नहीं।

संध्या की वात सुनकर मेरा मन सचमुच पसीज गया। मां ही मेरे जीवन का सर्वस्व थी। मैं जानता था कि मां के ज़िन्दा रहने का क्या सुख है! इसीलिए मां के ज़िन्दा न रहने के दु:ख की कल्पना भी मैं भली-भांति कर सकता था।

इसीलिए जव मैंने सुना कि उस लड़की की मां नहीं है, तव सचमुच मेरे मन में उसके लिए वड़ा कष्ट होने लगा। मेरी आंखों के सामने उस लड़की की तकलीफों का स्पष्ट चित्र खिंच गया। मैंने उस अंधेरे में ही राह चलते-चलते उस लड़की की तरफ देखा। उसकी दोनों आंखें आंसुओं से छल-छल कर रही थीं।

मैंने पूछा—क्या तुम्हारी सौतेली मां तुम्हें प्यार करती है?

उसके जवाव में लड़की ने कहा—सौतेली मां क्या कभी भी अपनी मां की तरह होती है?

मैंने कहा—अगर तुम्हारी अपनी मां होती तो तुम्हें इस तरह अकेले सिनेमा देखने के लिए कभी भी जाने न देती। और कोई तुम्हारा छोटा भाई नहीं है क्या?

संध्या ने कहा—हां, मेरे वड़े भइया है। उम्र में मुझसे काफी वड़े हैं। लेकिन शादी करने के वाद भइया भाभी को लेकर अलग हो गए हैं।

मैंने पूछा—क्यों?

उस लड़की ने कहा—मेरी भाभी अच्छी नहीं है। भइया तो हमेशा हम लोगों के साथ ही रहा करते थे। लेकिन जिस दिन भइया को नौकरी मिल गई, उसी दिन से भइया विलकुल वदल गए। भाभी ने फिर हमारे साथ रहना पसन्द नहीं किया—वह भइया को लेकर अलग हो गई। जव तक भइया को नौकरी नहीं मिली थी, तव तक भाभी हमारे साथ ही रहती थी।

मैंने कहा—आजकल तो घर-घर की यही कहानी है।

वह लड़की कहने लगी—फिर तो मेरे सिवाय पिता जी की देख-भाल करने वाला और कोई न था। मेरी उम्र उस समय कम थी। मैं उस समय घर-गृहस्थी के बारे मे कुछ भी समझती न थी। मैं उस समय पिता जी से सिर्फ पूछा करती थी—पिता जी, भइया कहां गए? पिता जी कहते—तुम्हारे भइया मर गए। उसके बाद एक दिन हमारी नई मा आई। उसी नई मां ने हमारे घर में आकर टूटी गृहस्थी का बोझ अपने कन्धों पर उठा लिया। नही तो पिता जी बचते नही और मैं भी मर-खप जाती।

रास्ते पर चलते-चलते उस लड़की की राम-कहानी सुन रहा था। कुछ दूरी पर वही मैदान नजर आया। उस मैदान तक उसे पहुचा देने पर ही मेरा कर्त्तव्य पूरा हो जाता।

लेकिन न जाने क्यो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह मैदान बहुत जल्दी चला आया। इतनी जल्दी अगर सामने वाला मैदान नही आता तो कितना अच्छा होता! मैं सोचने लगा कि वह लडकी अगर मुझ से घर तक पहुंचाने का अनुरोध करे तो मैं कृतार्थ हो जाऊगा।

भाई, मैं उसी समय से जानता था कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर—ये सब मनुष्य के असली दुश्मन हैं। लेकिन अनेक शास्त्रों का ज्ञान रहने के बावजूद बहुत-से आदमी इनके माया-जाल मे फमकर बर्बाद हो जाते हैं, यह तथ्य भी मेरा जाना हुआ और पढा हुआ था। लेकिन उस परिस्थिति मे पड़कर मानो मैं सब कुछ भूल गया। मैदान पार हो जाने के बाद भी मैंने कोई आपत्ति नही की। मैं उसके साथ-साथ चलने लगा।

हठात् एक अंधेरी जगह के पास आकर वह लड़की रुक गई।

मैं अवाक् रह गया। मैंने पूछा—यह क्या? रुक क्यो गई?

मैंने देखा कि अचानक उस लडकी का चेहरा बिलकुल बदल गया था। वह मुझे इस तरह देखने लगी कि मैं तो बस डर गया। यह क्या? वह

मुझे इस तरह घूर-घूर कर क्यों देख रही थी ?

मैंने पूछा—तुम्हें क्या हो गया ? तुम मुझे इस तरह क्यों देख रही हो ?

उस लड़की ने कहा—तुम मुझे यहां अंधेरे में क्यों ले आए हो ? इस सुनसान मैदान में···?

मैं ? मैं उसे सुनसान मैदान में ले आया था ! क्या कह रही थी वह छोकरी ! मैं तो उसकी बातें सुनकर कांप उठा।

लड़की की आवाज़ तब तक तेज़ हो चुकी थी। वह कहने लगी—अगर आप मुझे यहां नहीं ले आते तो मैं यहां क्यों आती ? कहिए, क्या है मतलब आप का ?

मैंने चारों तरफ नज़रें दौड़ाईं। सुनसान मैदान था और था घना अंधेरा। फिर भी मुझे ऐसा आभास हुआ मानो कुछ लोग चुपचाप ओट में छिपे हुए थे। वे लोग मानो छिप-छिप कर हम दोनों को देख रहे थे।

मैं डर के मारे थोड़ी दूर सरक गया।

लेकिन उस लड़की ने तपाक् से मेरा हाथ पकड़ लिया।

वह कहने लगी—भाग कहां रहे हैं ? सोच रहे हैं कि भाग जाएंगे ? मैं अभी चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को इकट्ठा कर लूंगी।

मैंने क्षीण प्रतिवाद के स्वर में कहा—तुम्हीं तो मुझे यहां खींच लाई हो। तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम्हें अंधेरे में अकेले घर जाने में डर लगता है।

फिर तो उस लड़की ने और भी ऊंची आवाज़ में कहा—मनगढ़न्त कहानी सुनाकर अपना दोष छिपाने की कोशिश मत कीजिए। इससे आपको ही मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। बोलिए, आप मुझे यहां ज़बर्दस्ती क्यों ले आए हैं ? कहिए, आपका क्या इरादा है ?

मैं तो उस समय डर के मारे कांप रहा था। फिर भी थोड़ा साहस

जुटाकर मैंने पूछा—ये सारी झूठी बातें क्यों कह रही हो?

उस लड़की ने कहा—चुप रहिए। चुपचाप अपनी अगूठी निकाल दीजिए...।

मुझे याद आया कि मेरी उंगली मे सोने की एक अगूठी थी। जब मेरे पिता जी जीवित थे, तभी मेरे यज्ञोपवीत-सस्कार के समय वह अगूठी मुझे मिली थी। अगूठी की कीमत भले ही अधिक न हो; लेकिन यह अंगूठी मेरी सबसे प्यारी चीज थी। अगूठी के ऊपर मेरे नाम का प्रथम अक्षर 'जे' अंकित था।

उस लडकी ने फिर चीखकर कहा—अगूठी दीजिए, नहीं तो मैं हल्ला मचा दूंगी। चीख-चीखकर लोगो को इकट्ठा कर लूंगी।

अन्धेरे मे उस लडकी का चेहरा अच्छी तरह देख नही पा रहा था। साथ ही साथ कल्पना मे आंखो के सामने पुलिस का चित्र उभरने लगा। उसके बाद कोर्ट, कचहरी और महिला के शीलहरण का अभियोग-विचार ...! और फिर साथ ही साथ मा के ऊपर होने वाले चाची के अत्याचारों का चित्र भी उभरा। मा की तकलीफों की बात याद आते ही मैं नरम पड गया।

देखते ही देखते मैंने अपनी उगली से अगूठी निकालकर उस लडकी को दे दी। और न जाने कहां से अन्धकार फाड़कर कुछेक लोग बिलकुल मेरे सामने आ गए। सभी के मुंह से हसी फूट रही थी।

उन्हें देखकर ऐसा लगा मानो सभी उस लडकी के दल के आदमी थे। उस लडकी के साथ वे सारे लोग हंसते-हसते चले गए। जाते समय वे धमकी देते गए—देख साला, अगर तू पुलिस को खबर देगा तो हम तेरा खून कर डालेंगे। होशियार...।

उसके बाद ही वे सब अन्धेरे में न जाने कहां ओझल हो गए।

□

मैं अब तक कहानी सुन रहा था। कहानी सुनाते-सुनाते ज्योंही जहर रुका, मैंने पूछा—उसके बाद ?

जहर ने कहा—भाई, मेरे जीवन की दूसरी दुर्घटना यही थी। पहली दुर्घटना थी मेरे पिता जी की मृत्यु।

जहर को मैं बचपन से जानता हूं। जिस समय जहर के पिता जी की मृत्यु हुई, उस समय वह हमारे स्कूल में नहीं पढ़ता था। जहर उस समय और किसी दूसरी जगह पढ़ता था। पिता की मृत्यु के बाद जब वह मालदा में अपने चाचा जी का आश्रित होकर अपनी मां के साथ आया था, उसी समय से मेरा उसके साथ परिचय है।

उसी जहर की अब इतनी उम्र हो गई है। जीवन में बहुतेरे घात-प्रतिघात खाकर उसका मन बड़ा मजबूत बन गया है।

मुझे याद है कि जिस दिन हम लोग मालदा से चले आ रहे थे, उस दिन उसकी हालत रोने-जैसी हो गई थी। मेरे घर पर आकर वह काफी देर तक बैठा रहा था और बातें करता रहा था।

वे सारी बातें मुझे अभी भी याद हैं।

जहर ने कहा था—कलकत्ता जाकर चिट्ठी दोगे न !

मैंने कहा था—ज़रूर दूंगा। तुम जवाब तो दोगे न ?

जहर ने कहा था—हां, ज़रूर।

लेकिन बचपन का प्रेम जैसे हो जाता है, वैसे ही चला भी जाता है। मालदा से कलकत्ता आकर फिर मैंने बहुत-से नये दोस्त बना लिए। उनके साथ मिलने-जुलने के बाद मुझे यह याद भी नहीं रहा कि मेरा जहर नाम का एक दोस्त भी है।

बीच-बीच में अगर जहर की याद आती भी तो सोचता कि दूसरे दिन ही एक चिट्ठी डाल दूंगा। लेकिन दूसरे दिन फिर उसकी बात याद रहती ही नहीं।

यही तो जिन्दगी का मजा है। एक घाट से दूसरे घाट तक जाना और अतीत को भूलकर निकट भविष्य की बाट जोहते रहना। एक घाट से दूसरे घाट तक जाने के पट-परिवर्तन के बीच तिल-तिल खत्म हो जाने का नाम ही है जिन्दगी। इसी जिन्दगी की समीक्षा करने के लिए ही जितने भी कहानी, नाटक और उपन्यास हैं—उनकी सृष्टि हुई है। जिन्दगी में इतना वैचित्र्य भरा हुआ है कि करोड़ों साल तक लिखते रहने पर भी वह चुकेगा नहीं। चुकने की चीज वह है ही नहीं।

इसीलिए मेरा यह स्वभाव बन गया है कि जहां भी जाता हूं, वहां कोई आदमी मिलने पर मैं उसके साथ कहानी जोड़ देता हूं। हजारों-हजार कहानियां सुनते-सुनते उनके बीच से कभी एक-आध चरित्र या एक-आध कहानी मैं पा भी जाता हूं। और उतने में ही मेरा काम बन जाता है।

इतने दिनों से इसी तरह चल रहा है। लेकिन इतने दिनों के बाद जहर के साथ मेरी मुलाकात होगी, इसे भी ईश्वर का विधान ही कहा जाएगा। नहीं तो भला इस समय उसके साथ मेरी मुलाकात होती ही क्यों?

इस समय मेरी भी काफी उम्र हो गई है और जहर की भी। वह आजकल एडवोकेट बन गया है। सच कहा जाए तो आज वह एक नामी-गिरामी एडवोकेट है। शादी हुई है और बच्चे भी। उसने मोटर और बंगला भी हासिल कर लिया है। जिन्हें पाने पर मनुष्य अपने-आपको सार्थक मानता है, वे सारी चीजें जहर ने पा ली हैं। उसके मुवक्किल अनगिनत हैं और बेशुमार है उसकी दौलत। सिर्फ शनिवार के दिन उसकी छुट्टी रहती है। उस दिन वह कोर्ट-कचहरी और मुवक्किलों से छुट्टी लेकर मेरे घर पर अज्ञातवास करता है।

कहा करता है—मैंने तय किया है भाई कि आज क
ों से छुट्टी लूंगा। इस दिन मैं न तो कोर्ट-कचहरी की बातें सोचूंगा
ही रुपये-पैसों की चिन्ता-फिकर करूंगा। शनिवार के दिन मैं सिर्फ
करूंगा। शनिवार के दिन मैं ऐसे लोगों से मिलूंगा; जो मुवक्किल
, जज नहीं हैं और वकील नहीं हैं—जो सिर्फ मनुष्य हैं; जज एवं
के अलावा कुछ और ही जिनका प्रोफेशन है।

कभी-कभी जरूर कहता—मैंने जिन्दगी में बुरे दिन खूब देखे हैं और
छे दिन भी मैं देख चुका हूं। सिर्फ अपने ही मामले में नहीं, वरन् सबके
मले में मैंने देखा है कि जिनके पास अधिक रुपये नहीं हैं, जो रोज़ कुआं
खोदते है और रोज़ पानी पीते हैं; वे ही सुखी हैं। विशेष रूप से वे, जो
किराये के मकान में रहते हैं।

जरूर आगे फिर कहता—लेकिन क्या वह हमारी इच्छा के अधीन
है? जिस तरह मनुष्य के जीवन में झमेले आते हैं, उसी तरह शान्ति भी
आती है। लेकिन दोनों ही हैं क्षण-स्थायी। झंझट-झमेले के समय ऐसा
लगता है कि शायद इनसे मुक्ति नहीं मिलेगी और शान्ति के समय ऐसा
लगता है कि यह शान्ति तो चिरस्थायी है। लेकिन झंझट-झमेले और
शान्ति देने का जो मालिक है, वह शायद यह सब जानकर मन ही म
हंसता है। इसीलिए वह कब, किसे, क्या देगा, इसके बारे में पहले से
कोई कुछ भी कह नहीं सकता। इसीलिए विपत्ति आने पर ही हम भग
को पुकारते हैं तथा सुख-शान्ति के समय हम अहंकार के मारे अपने-अ
भूल जाते हैं। दरअसल हम लोग सभी बुद्धिमान हैं। हममें से को
भक्तिमान नहीं। जब हम मन्दिर में पांच चवन्नियों का प्रसाद चढ़ाते
हमारी प्रत्याशा यही होती है कि पांच चवन्नियों के बदले पांच
रुपयों का लाभ हो। यह पूजा बुद्धिमान की पूजा है। कितना लग
कितना पाया! लेकिन भक्तिमान की पूजा? भक्तिमान की पूजा

ही होती है। यह है भगवान की पूजा के लिए ही पूजा करना'''। उसमें नफा-नुकसान हुआ है या नहीं, इसके लिए माथापच्ची नहीं की जाती।

जहर ठहरा एक एडवोकेट। वाक्-कला ही उसके धन्धे की भित्ति है। इसलिए मेरे साथ जब वह बातें करता है, तब भी वह सोचता है कि मैं मानो कोई जज या मजिस्ट्रेट हूं। इसलिए मैं भी उस मामले में कोई बाधा नहीं पहुंचाता।

जब उसका प्रवचन चल रहा था तो मैंने बीच ही में बाधा देते हुए कहा—यह तो भाई कोई कहानी नहीं हो रही है। यह तो हो रहा है उपदेश सुनाना। इन सब बेकार की बातों को सुनकर मुझे क्या फायदा होगा? इनमें कहानी कहां है? यह तो है थोथी फिलॉसफी।

जहर ने कहा—तुम तो भाई बहुत जल्दी धीरज खो देते हो। लगता है कि तुम कभी भी स्वर्ग में नहीं जा सकोगे'''।

मैंने पूछा—क्यों?

जहर ने कहा—तो फिर एक कहानी सुनो'''।

एक मालिन थी। वह कवि कालिदास को फूल लाकर दिया करती थी। कालिदास गरीब ब्राह्मण थे। इसलिए वे फूलों का दाम नहीं दे सकते थे। उसके बदले में वे अपना काव्य पढ़कर सुनाते थे। एक दिन मालिन के पोखरे में एक विचित्र कमल खिला। मालिन ने उसे लाकर कालिदास को उपहार में दिया। कवि कालिदास उसके उपहार के पुरस्कार-स्वरूप 'मेघदूत' पढ़कर सुनाने लगे। 'मेघदूत' काव्य-रसों का सागर है, किन्तु यह सभी जानते हैं कि उसके प्रारम्भिक श्लोक कुछ नीरस हैं।

मालिन को वे श्लोक अच्छे न लगे। वह उठ कर चल दी।

कवि ने पूछा—क्यों मालिन, चल दी?

मालिन बोली—तुम्हारे श्लोकों में रस कहां है?

कवि ने कहा—मालिन, तुम कभी भी स्वर्ग न जा सकोगी।

मालिन ने पूछा—क्यों ?

कवि ने उत्तर दिया—स्वर्ग जाने को वहुत-सी सीढ़ियां हैं। लाख योजन सीढ़ियां चढ़कर ही स्वर्ग जाया जा सकता है। मेरा यह 'मेघदूत' काव्य भी ठीक वैसा ही है। ये नीरस श्लोक प्रारम्भ की सीढ़ियां हैं। तुम इन मामूली सीढ़ियों पर नहीं चढ़ सकीं, तो फिर लाख योजन की सीढ़ियों पर किस तरह चढ़ोगी ?

तव मालिन ने ब्रह्म-शाप से स्वर्ग खोने के डर से 'मेघदूत' काव्य सुना। उसके वाद प्रसन्न होकर वह दूसरे दिन मदनमोहिनी नाम की अद्भुत माला गूंथकर कवि कलिदास के गले में पहना गई।

आखिर में जहर ने कुछ रुककर कहा—तुम भी कालिदास की मालिन जैसे ही हो। इतने में ही तुम अधीर हो गए ? आखिर तक कहानी को सुनो भाई।

मैंने कहा—खैर यह सव तो हुआ···। उस दिन वाली घटना के वाद क्या हुआ, वही सुनाओ।

जहर कहने लगा—भाई, अव तो हम लोगों की काफी उम्र हो चुकी है। इसीलिए मौका मिलते ही पुरानी वातें सुनाने को जी चाहता है। इसीलिए कोई आदमी मिलने पर ही वचपन की वातें शुरू कर देता हूं। सो जब तुमने कल मुझे वताया कि तुम यह सोच नहीं पा रहे हो कि किसके वारे में लिखोगे, तव मैं घर जाकर विछोने पर लेटा-लेटा सोचने लगा। दूसरे दिनों मैं सोने के पहले सिर्फ इन्कम टैक्स और मुवक्किलों की वात सोचा करता था। लकिन मैं कल सोचने लगा तुम्हारी कहानी के वारे में। मैंने अपनी सारी ज़िन्दगी के वारे में ही सोचना शुरू किया। मैं क्या था और क्या वन गया···? इत्यादि···, इत्यादि···।

सचमुच भाई, एक दिन मैंने कुछ ज्यादा भात खा लिया था। इसके लिए मेरी चाची जी ने मुझे खूव खरी-खोटी सुनाई। उनकी वातें सुनकर

मेरा मन खराब हो गया था। और इस समय मेरे घर में बाहर के चार आदमी हर रोज आते हैं। यह सब कहां से हुआ ? यह सब किसने कराया ?

सोचते-सोचते अचानक बचपन की वही घटना याद आ गई। वही घटना, जिसका बयान मैंने थोड़ी देर पहले किया है। लेकिन मेरी उस दिन की हालत की तुम कल्पना करो। मैं मारे शर्म के समझ नहीं पा रहा था कि कैसे घर लौटूंगा।

जब मन की ऐसी हालत में ही मैं अपने घर के सामने आया तो मैंने देखा कि जिस तरह मैंने सदर दरवाज़े पर ताला लगाया था, ताला उसी तरह लगा हुआ था। वहीं भी कोई नहीं···। किसी को खबर तक नहीं हुई। खबर मिल जाने पर तो शायद बहुत ही डांट खानी पड़ती। लेकिन किस्मत अच्छी थी कि किसी को भी इस दुर्घटना का पता नहीं चला।

लेकिन दूसरे दिन ही बात खुल गई।

मां ने ठीक देख लिया। मैं उस समय भोजन कर रहा था। हठात् मां ने पूछा—हां रे, तुम्हारी अंगूठी कहां गई ?

मैं क्या बोलूं, क्या जवाब दूं; यह समझ ही नहीं पा रहा था।

आखिरकार मैंने झूठमूठ कहा—अंगूठी खो गई है मां।

मां नाराज़ हो गई। उसने कहा—अंगूठी खो गई ! तुम्हारे यज्ञोपवीत के समय कितने रुपये खर्च तुम्हें इतनी बढ़िया अंगूठी बनवाकर दी गई थी और तुम उसे खो आए हो ?

मैंने कहा—मां, तुम गुस्सा मत करो। मुझसे गलती हो गई है। अब आगे से सावधान रहूंगा।

चाची के घर में मां मुझे ज्यादा जोर से डांट भी नहीं पा रही थी। कारण यह कि चाची को मालूम होने पर और भी हंगामा होता।

मां दबी आवाज़ में कहने लगी—मैंने तुम्हें पहले ही कहा था कि यह

अंगूठी अभी मत पहनो। बड़ा होने पर इसे पहनना। लेकिन तुमने मेरी बात मानी नहीं। अब तुम्हीं भुगतो। मेरा क्या है? क्या अब कभी मैं तुम्हें वैसी अंगूठी बनवाकर दे सकूंगी? क्या मेरी कभी भी वैसी अच्छी हालत हो सकेगी?

मां की डांट-फटकार को मैं चुपचाप पचा गया। कुछ कहने लायक मैं रहा ही नहीं। और उसके बाद धीरे-धीरे सब कुछ सहज-सामान्य हो गया। मैंने प्रतिज्ञा की कि जीवन में मैं अब कभी भी विलासिता के पथ पर कदम नहीं रखूंगा।

अंगूठी अवश्य ही देखने में बहुत बढ़िया थी। उस ज़माने में उस अंगूठी के लिए जौहरी ने दाम भी खूब लिए थे, ऐसा मैंने सुना है।

लेकिन उस ब्लैकमेल की घटना ने मेरी ज़िन्दगी में एक मोड़ ला दिया। अगर वह घटना नहीं घटती, तो शायद मैं जो कुछ आज हूं, हो नहीं पाता। वह जो एक मामूली-सी अंगूठी मेरे हाथ से निकल गई, उसके बाद वाले दिन से ही मैं कुछ और ही आदमी बन गया।

मेरा नजरिया ही बदल गया। मैंने नये दृष्टिकोण से इस दुनिया को देखना शुरू कर दिया। एक मामूली-सी अंगूठी मानो मुझे दिव्य दृष्टि दे गई।

उसके बाद कई साल गुजर गए। आंधी-तूफान की तरह ही गुजर गए, कह सकते हैं। क्या से क्या हो गया, मैं कुछ जान ही नहीं पाया भाई। लेकिन उसके बाद एक दुर्घटना हुई।

मैंने पूछा—दुर्घटना? कैसी दुर्घटना?

जहर ने कहा—मैं यथास्थान सब कुछ बताऊंगा। इतनी जल्दबाजी क्यों कर रहे हो?

मेरी अंगूठी खोने का दुःख मां मरते दम तक भूल नहीं सकी। रुपयों के कारण नहीं, बल्कि इसलिए कि वही मेरे पिता जी का पहला और

आखिरी उपहार था। मेरे पिता जी की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। इसीलिए पिता जी का साया सिर से उठते ही मैं अनाथ हो गया था। लेकिन पिता जी की शेष-स्मृति थी वही अंगूठी।

वह अंगूठी भाई खूब बढ़िया थी। बढ़िया कहने का मतलब यह है कि खूब कीमती। काफी सोने से वह बनी थी और उस पर मीने का काम था। मीने के काम के ऊपर एक सुन्दर 'जे' अक्षर खुदा हुआ था। मेरे यज्ञोपवीत के समय पिता जी ने बहुत प्यार से वह अंगूठी दी थी। और मैं ऐसा नालायक निकला कि उसी अंगूठी से हाथ धो बैठा।

मां अपने जीवन के आखिरी दिनों में लेटी-लेटी केवल उस अंगूठी की की बातें करती। वह मेरी पत्नी से कहती—बहू, जहर के हाथ में कुछ भी रुपये-पैसे मत देना। उसको भुलाने की बड़ी खराब आदत है। उसे उसकी जनेऊ के समय आध भरी सोने की एक अंगूठी बनवा कर दी गई थी; उसे भी वह खो चुका है। वह बड़ा ही भुलक्कड़ आदमी है, सभी चीजें खो डालेगा।

मैं तब तक कितना बड़ा हो चुका था। वकील के रूप में मेरा खूब नाम हो चुका था। कलकत्ता शहर में मैंने अपना मकान बना लिया था। फिर भी मां की निगाहों में मैं बच्चा ही था। मां की नज़रों में मैं कभी भी बड़ा हुआ नहीं।

मेरी पत्नी मुझसे पूछती—क्यों जी, आपने क्या अपनी आध भरी सोने की अंगूठी खो डाली थी?

मैं उसके सवाल पर हंसता।

मैं पूछता—तो फिर मा ने तुमसे भी सब कुछ बता दिया?

पत्नी कहती—हां, मां ने मुझे सब कुछ बता दिया है। उस अंगूठी पर आप के नाम का पहला अक्षर 'जे' खुदा हुआ था न?

और फिर मा जानती थी कि उस समय मेरी आर्थिक अवस्था इतनी

बढ़िया हो गई थी कि मैं उस तरह की एक सौ अंगूठियां खरीद सकता था। लेकिन मामूली-सी आध भरी सोने की अंगूठी का दु:ख मां जीवन-भर भूल नहीं सकी।

आज भी मुझे मां की बातें सोचकर बहुत दु:ख होता है। दु:ख-तकलीफें उठाकर मुझे बड़ा करने के बाद उन्हें जो खुशी मिलनी चाहिए थी, वह मिली नहीं। मेरी हालत जब बढ़िया हुई, उस समय मां ने भी बीमार होकर खटिया पकड़ ली। उसी बिछौने पर पड़ी-पड़ी मेरी मां मेरी पत्नी को पुकारती और पूछती - आज बाजार से कौन-सी मछली आई है बहू ?

मेरी पत्नी मछली का नाम बताती। किसी दिन हिलसा, किसी दिन झींगा-मच्छी तो किसी दिन रोहू···।

जब मां को पता चलता कि बाजार से हिलसा मछली आई है, तब मेरी मां मेरी पत्नी को सिखा देती कि हिलसा मछली किस तरह पकाई जाएगी।

मां कहती—बहू, हिलसा मछली को तलना नहीं चाहिए। हिलसा मछली तलने पर खराब हो जाती है। जहर भाप में तैयार की गई हिलसा मछली खाना पसन्द करता है। हिलसा मछली को एक मुंह-ढकी बटलोई में भात के भीतर रख देना। तुम्हारा भात भी तैयार होगा और भाप में मछली भी सीझ जाएगी।

—उसके बाद···?

मां थी विधवा औरत, मछली खाती नहीं थी। लेकिन मैं मछली पसन्द करता हूं, इसीलिए वह मेरी पत्नी को सब कुछ सिखा देती।

और क्या सिर्फ मछली ?

किसी-किसी दिन वह पूछती—क्यों बहू, आज बाजार से क्या-क्या आया है ?

मेरी पत्नी एक-एक कर नाम गिना देती। आलू, परवल, भिण्डी

इत्यादि···इत्यादि···।

मा कहती—बहू, तुम कुछ बुरा मत मानना। लेकिन तुम बाजार से सब्जियां मगाना जानती नही। रोज ही सुनती हूं कि एक ही तरह की चीजें आई हैं। क्यो, बाजार में और चीजें नहीं मिलती ? रोज बस एक ही तरह की सब्जिया आ रही हैं—आलू-बैंगन-परवल और परवल-बैंगन-आलू !

मुझे क्या-क्या खाना पसन्द था, वह मा को जुबानी याद था। सुबह बाजार जाने के पहले मां बता देती कि उस दिन क्या रसोई बनेगी। और फिर खुद मां खाती साबूदाना और बार्ली। वही साबूदाना और बार्ली खा-खाकर आखिरी समय में मां को खाने से अरुचि हो गई थी। कुछ भी मुंह में रख नही पाती थी वह। कुछ भी मुह मे डालने पर सब कुछ उल्टी हो जाता था।

मैं प्रतिदिन कोर्ट से आकर घर के भीतर मा को देखने जाता।

मैं मां के पास बैठकर पूछता—आज कैसी हो, मां ?

मां मुझे देखते ही कहती—अरे जहर, बहू रानी को खाना बनाना बिलकुल भी नहीं आता।

मैं कहता—क्यों मां ? बहू रानी तो खाना बढ़िया ही बनाती है।

मा कहती—खाक बढिया खाना बनाती है। आज मैंने सुना है कि उसने चने की दाल बनाई है। यह सुनकर मैंने पूछा कि चने की दाल जो तुमने बनाई है, उसमें क्या-क्या डाला है ? मैं तो सुनकर ताज्जुब मे पड गई। बहू चने की दाल बनाना भी नहीं जानती। चने की दाल में नारियल का चूरा, तेजपत्ता और इलायचीदाना पडता है, यह भी उसे मालूम नहीं। मैंने तभी कहा—देखो बहू, जहर इस दाल को छुएगा भी नहीं।

मैंने कहा – हा मा, तुमने ठीक ही कहा है। मैं उस दाल को बिलकुल भी खा नही सका।

मां कहती—खा भी कैसे पाते? बहू ने जब मुझे बताया था, मैंने तो तभी कह दिया था कि जहर इस दाल को खा नहीं सकेगा।

भाई, मैंने दाल खाई जरूर थी। दाल बढ़िया ही बनी थी। लेकिन मां को खुश करने के लिए मुझे वैसा कहना पड़ा।

बहू रसोई के बारे में ठीक से जानती नहीं थी, यह बात सुनकर मां बहुत खुश होती। उसके बाद दुःख से कहती—अरे, मेरा शरीर भी अब इतना कमजोर हो गया है कि मैं खुद अपने हाथ से खाना बनाकर तुम्हें खिला नहीं सकती।

मैं मां को धीरज बंधाते हुए कहता—इससे क्या हुआ? जब तुम अच्छी हो जाओगी, उस समय खुद अपने हाथों से पकाकर खिलाना। अभी दो-चार दिन तकलीफ ही सही।

मां कहती—अब क्या मैं अच्छी हो सकूंगी रे? तुम्हें फिर से अपने हाथों से खिलाने की बात तो मुझे अच्छी ही लगती है, लेकिन भगवान ने मुझे मार रखा है। मैं क्या करूं, बोलो?

मैं मां को सांत्वना देता और मां की रसोई की खूब तारीफ करता। यह सुनकर मां कुछ पलों के लिए ही सही, शान्ति पाती।

मेरे लिए मां के मन में कितनी दुश्चिन्ताएं थीं, उसके अनेक प्रमाण मैंने मां के शेष जीवन में पाए थे।

मां हमेशा इस बात का अफसोस किया करती थी कि वह पोते की शादी देख नहीं पाई। मेरा लड़का उस समय मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहा था। पोते की बहू का मुंह देखे बिना इस संसार से विदा हो जाना मां के लिए बड़ा ही कष्टकर था। वह समझती थी कि पोते की शादी किए बिना मरने से नरक मिलता है।

मां अफसोस करती हुई कहती—ज्योति की बहू को देखकर नहीं जा सकी, यही अफसोस मुझे रह गया है।

ज्योति पैदा होने के बाद मे ही अपनी दादी के पास ही रहा करता था। मां की तबीयत उन दिनों ठीक नहीं थी। एक हाथ से वह रसोई बनाती और एक हाथ मे पोते की देखभाल करती। फिर भी मैंने कभी भी मां को थकते नहीं देखा। मां ने पहले अपने देवर के घर में खूब मेहनत की थी और अब मेरे परिवार में भी वह उसी तरह मुंह बन्द कर खटती जाती थी…। और फिर मेरे घर पर रसोइयों और नौकर-नौकरानियों की कोई कमी नहीं थी।

मैं कहता—मां, तुम थोड़ा आराम करो न। अब तो हम लोगों की हालत सुधर चुकी है। काम करने के लिए तो बहुत-से लोग रखे हुए हैं। अब तो तुम थोड़ा विश्राम करो…।

मा कहती—आदमी रखकर मेरी खूब भलाई की है न! सब को बस अपने-अपने वेतन की फिक्र है…। काम के न काज के, ढाई सेर अनाज के…। मैं जिस तरफ नजर नहीं रखूंगी, उधर ही बारह बज जाएंगे।

मैं कहता—उनपर नजर रखने के लिए तो तुम्हारी बहू है ही। वही देखेगी। तुम्हारी अब काफी उम्र हो गई है। तुम अब अपने दिन भगवान की पूजा-आराधना में बिता सकती हो।

मा कहती—बहू है इस जमाने की लडकी। मिलावटी चीजें खा-खाकर बड़ी हुई है। बहू इतने लोगों पर नज़र कैसे रख सकेगी? हम लोगों ने उस जमाने में खांटी दूध पिया है और खांटी तेल-घी खाया है। इतनी आसानी से हम लोगों का शरीर खराब नहीं होता। तुम सारे आदमियों को जवाब देकर देख लो; तुम देखोगे कि मैं अकेली ही एक हाथ से घर का सारा काम सम्भाल लूंगी।

नतीजा जो होना था, वही हुआ। मां ने एक दिन खटिया पकड़ ली। इतनी मेहनत बर्दाश्त होती तो कैसे! परिवार के दूसरे लोगों की देखभाल करते-करते उसने अपनी तरफ बिलकुल भी ध्यान नहीं दिया। वह बेला-

कुवेला खाती रही…। अपने-आप पर उसने काफी अत्याचार किया।
वेकार नहीं जाए, इसके लिए वह बासी भात पानी में मिलाकर
रही। और उसपर एक शाम उपवास। वार-तिथि और एकादशी-
—सभी मानकर चलती थी वह। और फिर बिछौने पर पड़कर भ
वह निश्चिन्त हो सकी थी? दाल में किस चीज़ का छौंक देना होग
मां रसोईए को वता देती। तो कभी वह इस वात की खवरदारी कर
रात में सदर दरवाज़े का ताला वन्द किया गया है या नहीं!

आज मुझे लगता है कि यदि मां जिन्दा रहती तो शायद मेरे
खर्च इतना वढ़ नहीं जाता। दरअसल मां ही मेरे घर की लक्ष्मी थी।
दिन मेरी मां की आंखें मुंद गई, उसी दिन से मानो लक्ष्मी भी हम
हो गई!

□

इतनी देर तक मैं जहर से उसकी कहानी सुन रहा था।

मैंने पूछा—भाई जहर, तुमने तो अंगूठी खोने की कहानी सुना
अव तुम सुनाने लगे अपनी मां की कहानी! आखिर इन दोनों कहा
परस्पर क्या सम्वन्ध है?

जहर ने कहा—तुम सचमुच कालिदास की मालिन हो! तु
कहानी तो सुनो। वही वात कहने के लिए ही तो मैंने यह सात का
भूमिका वांधी है। वुनियाद अगर मज़वूत न हुई तो फिर सात-म
मकान खड़ा कैसे होगा?

मैंने कहा – देखो भाई, पूजा-विशेषांक के लिए उपन्यास लिखना
यह तो तुम समझ ही पा रहे हो। वुनियाद पक्की करने में काफी सम
जाएगा और फिर पाठक-पाठिकाओं का हाल तो तुम्हें मालूम है ह

कहानी का अन्त जानने के लिए शुरू से ही उतावले रहते हैं।

जहर ने कहा—भाई, मैं तो यह सब कुछ भी नहीं जानता। मैं ठहरा एक एडवोकेट। मैं तो यही जानता हू कि केस को मजबूत बनाने के लिए गवाहों को मजबूत बनाना पडता है। मैंने अपनी मा की कहानी इतने विस्तार के साथ इसलिए बताई कि वह अगूठी खोने के बाद से मां अपना दु:ख कभी भी भूल नही सकी। मैं जब बडा हुआ, तब वह अगूठी छोटी हो गई थी। अगूठी मेरी उगली मे घुस नही पाती थी। मैं इसीलिए वह अगूठी पहनता नही था। मा ने कहा था कि जनेऊ के समय की अगूठी खोलनी नहीं चाहिए। इसीलिए एक सोनार को बुलाकर मा ने अगूठी को और बडा करवा दिया, ताकि वह मेरी उगली मे घुस सके।

उसके बाद मा के खूब जोर डालने पर मैं अपने लड़के के विवाह के लिए सुयोग्य लडकी की तलाश करने लगा।

लडके की शादी करने की वैसे इच्छा न थी। इसका कारण यह था कि उस समय तक भी वह छात्र था। लेकिन दादी की मनोकामना पूरी करने के लिए शादी करने के सिवाय और कोई उपाय न था।

डाक्टरी का छात्र विवाह के पात्र के रूप मे आज के जमाने मे कितना लोभनीय है, यह तो तुम जरूर जानते हो। मेरे लडके के साथ भी वही बात थी। उसके अलावा स्वभाव, चरित्र और स्वास्थ्य के विचार से भी वह लडकियों के अभिभावकों की कसौटी पर खरा उतरता था।

मैं भी अपने लडके के लिए लड़की ढूढने लगा। लडकी का चुनाव करने के सम्बन्ध मे एक ही चीज पर मेरा ध्यान था। वह चीज थी बढिया खानदान और लड़की का उत्तम स्वास्थ्य और रूप। दहेज के सम्बन्ध मे मेरी तरफ से कोई भी माग नही थी।

इस प्रकार लगभग सौ लड़कियां देखने के बाद आखिरकार एक लड़की को मैंने पसन्द किया। लड़की ठीक वैसी ही थी, जैसी मैं चाहता

था। पहले खानदान की बात बताता हूं। कलकत्ते का सबसे खानदानी मुहल्ला है जोड़ासांकू। वहीं उनका सात पीढ़ियों से निवास था। लड़की के पिता गुज़र चुके थे। विधवा मां थी। लड़की अपनी मां की एकमात्र संतान थी। विराट् सम्पत्ति थी उनके पास। मां के मरने के बाद उस सम्पत्ति का मालिक होगा उसका दामाद ही।

इस तरह मुझे कई तरह के लोभ दिखाए गए थे।

किन्तु मैं ठहरा एक वकील। इसलिए वह लोभ मुझे प्रभावित नहीं कर सका। आखिर मैंने अपने पेशे के मार्फत जिस तरह उत्थान देखा है, उसी तरह देखा है पतन भी। सम्पत्ति के भागीदारों के झगड़े में कितने खानदानों को नष्ट होते मैंने जिस तरह देखा है, उसी तरह कितने ही पैसे वाले आदमियों को अपनी बेशुमार धन-दौलत एक हस्ताक्षर के माध्यम से रामकृष्ण मिशन को दान देकर भिखारी होते भी देखा है।

इसीलिए सम्पत्ति के लोभ से मुझे काबू में नहीं लाया जा सका।

खानदान, स्वास्थ्य और रूप—ये तीनों ही थे मेरी पसन्द के यार्ड-स्टिक अथवा मानदण्ड।

खानदान अच्छा मिलता तो स्वास्थ्य नहीं मिलता और अगर खानदान और स्वास्थ्य दोनों मिलते तो फिर रूप नहीं मिलता।

मां छटपटाती रहती। मैं लड़की देखकर जब घर लौटता तो पहले मुझे मां के पास जाना पड़ता। मुझे जाकर बताना पड़ता कि लड़की कैसी थी। मां पूरा विवरण सुने बिना मानती ही नहीं।

मां खोद-खोदकर एक-एक बात पूछती। पूछती—कैसी लड़की है? लड़की के मां-बाप जिन्दा हैं या नहीं? कितने भाई-बहन हैं? सिर्फ यही नहीं; वह यह भी पूछती कि वे लोग कैसे हैं—उन लोगों ने क्या-क्या खिलाया-पिलाया! इस तरह की सारी बातें मां को विस्तारपूर्वक बतानी पड़तीं।

मां को बताए बिना मैंने जीवन में कोई भी काम नहीं किया। और फिर कितनी साध थी उसे पोते के ब्याह की! मां की अगर खड़े होने की हिम्मत होती तो फिर मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ता। मा अकेली ही सारा काम सम्भाल लेती।

लेकिन जब तक मां जिन्दा थी, तब तक तो मैं मां की अनुमति लिए बिना कुछ भी नही कर सकता था।

सब कुछ सुनकर मा कभी कहती—नहीं रे जहर…। यहां हम लोग सम्बन्ध नही करेंगे।

मैं अवाक् रह जाता। पूछता—क्यों मां?

मां कहती—तुम्हे सिर्फ चाय पिलाकर उन लोगों ने विदा कर दिया। ऐसे घर मे मैं अपने पोते की शादी नही कर सकती।

मां की मनकें भी कम न थीं। मेरे जन्म के कुछ दिनों के बाद ही मा विधवा हो गई थी।

दूसरे के घर मे रसोई का काम कर मा ने मुझे बडा किया था। इतनी तकलीफें उठाने के बाद ही मां जान सकी थी कि भद्रता किसे कहते हैं, रईसी किसे कहते हैं और किसे कहते हैं कुटुम्बिता।

जब मां ने आपत्ति उठाई थी, तो फिर वहां सम्बन्ध करना सम्भव नही हुआ। सिर्फ चाय पिलाकर जो लोग भावी सम्बन्धी का स्वागत-सत्कार करते हों, वे लोग रईस खानदान के आदमी हो ही नहीं सकते। मा यह सब समझती थी, उसे कुछ बताने की जरूरत नही थी।

आखिरकार उसी जोड़ासांकू की रईस कोठी में ही सम्बन्ध पक्का हुआ।

मा पूछती—क्या सचमुच उन लोगों ने तुम्हें चादी की तश्तरी में तीन प्रकार के सन्देश दिए और दूध का शर्बत पिलाया?

मैं कहता—हां मां।

यह बात मां की निगाहों में उन लोगों के रईस होने की नज़ीर थी।

मां ने फिर पूछा—लड़की के बाल कैसे हैं? तुमने खुलवाकर देख लिए हैं न?

मैं कहता—हां मां। मुझे कहना ही नहीं पड़ा। उन लोगों ने खुद ही जूड़ा खोलकर बाल दिखा दिए। आजकल के जैसा नकली जूड़ा नहीं था। बिलकुल कमर तक लम्बे बाल थे।

यह सुनकर मां खुश हुई। उसके बाद मां ने पूछा—और पैर की उंगलियां कैसी हैं? अलग-अलग हैं या सटी हुई?

मैंने कहा—सटी हुई।

मां ने फिर पूछा—और शरीर का गठन?

मैंने कहा—सो तो मैं तुम्हें बतला ही चुका हूं मां। उस तरफ से भी कोई कोर-कसर नहीं है।

आखिर जब मां ने अपनी सहमति दे दी तो फिर मैंने और देरी नहीं की। मैंने झटपट बात पक्की कर ली।

फिर एक दिन मेरे लड़के की शादी हो गई। उन दिनों खिलाने-पिलाने पर तो कोई रोक थी नहीं। बारातियों ने खा-पीकर खूब तारीफ की। और उसके बाद हम लोगों ने बहू-भात के दिन जो प्रीति-भोज का आयोजन किया था—सभी आत्मीय-स्वजनों ने उसकी भी जी खोलकर सराहना की।

मैं निश्चिन्त हुआ। विशेष रूप से जब मां अपने पोते की बहू को देखकर खुश हुई थी, तो फिर मेरे कहने-सुनने को कुछ बचा ही न था।

□

जहर के रुकते ही मैंने पूछा—यह क्या? अभी भी तुम्हारी भूमिका ही चल

रही है क्या ? मेरे पाठक-पाठिका तो अधीर हो जाएंगे।

जहर ने कहा—भाई वह सब तुम लिखते वक्त ठीक कर लेना। मैं कोई लेखक तो हूं नहीं। मैं तो सिर्फ तुम्हारे लिए कच्चा माल जुटाता जा रहा हूं। तुम इनके बीच अपनी जरूरत के मुताबिक माल-मसाला घुसा देना।

मैंने कहा—जो हो, वह मेरा सरदर्द है—मैं समझूंगा। लेकिन जरा देखना कि आखिर में क्लाइमेक्स ठीक रहे। वहीं कहानी-लेखन की करामात देखी जाती है।

जहर ने कहा—वह क्लाइमेक्स तुम्हें जरूर मिलेगा। बहरहाल मैं जो कुछ घटना घटी थी, उसे ही ठीक-ठाक सुनाता जा रहा हूं। कहीं भी मैं थोड़ा-सा बढ़ाऊंगा भी नहीं और न ही घटाऊंगा। थोड़ी देर पहले ही मैंने कहा कि मेरे लड़के की शादी हो गई। उस शादी के बाद ही मैं अपनी वकालत में व्यस्त हो गया। मैंने नव-वधू से कह दिया—देखो बेटी, तुम्हें घर के काम-काज कुछ भी देखने नहीं होंगे। तुम सिर्फ मेरी मां की सेवा किया करो। तुम्हें और कुछ भी करना नहीं होगा।

लेकिन जब मैंने सोचा कि इस बार मेरे जीवन में परम सुख आ गया है, तभी शायद आकाश की ओट में अदृश्य रहने वाला भगवान हंसने लगा।

मैंने कहानी सुनते-सुनते बीच ही में जहर को टोक दिया—यह क्या, अब कहानी में भगवान कहां से टपक पड़ा ? भला भगवान क्यों हंसा ?

जहर ने कहा—भगवान यही सोचकर हंसा कि मनुष्य कितना आशावादी होता है। देखो, हमारे देश में एक कहावत प्रचलित है कि 'आशा से बचे चासा'। चासा यानी किसान आशा के सहारे ही जिन्दा रहता है। यह कहावत सिर्फ किसानों पर ही नहीं, बल्कि सारे मनुष्यों पर सही उतरती है। हिटलर को अगर मालूम होता कि आखिरकार उसकी ऐसी मर्मान्तक

परिणति होगी, तो क्या वह युद्ध करता? मिल्टन को अगर मालूम हो जाता कि जीवन के संध्या-काल में वह अंधा हो जाएगा, तो क्या वह पढ़ाई-लिखाई सीखता या काव्य-साधना करता? सम्राट् शाहजहां को अगर यह मालूम होता कि उसके पुत्र ही उसे शेष जीवन में किले में बन्दी बनाकर रखेंगे, तो क्या उसने शादी ही की होती? नेपोलियन अगर जानता कि अपने जीवन के आखिरी दिनों में उसे सेण्ट हेलेना द्वीप में निर्वासन-दण्ड भोगना होगा तो क्या वह फ्रांस की गद्दी पर बैठता? और मैं ही अगर जानता कि मेरी पुत्रवधू के आते ही मेरा जीवन विषमय हो जाएगा, तो क्या मैं उस लड़की के साथ अपने पुत्र का विवाह करने के लिए प्रस्तुत होता?

मेरी समधिन विधवा होने पर भी काफी जमीन-जायदाद की मालकिन थी। मैं जानता था कि विधवा समधिन की मौत के बाद एक दिन मेरा लड़का ही उनकी सारी जायदाद का मालिक बनेगा।

सो सम्पत्ति का लोभ मुझे नहीं था। दरअसल मैं लोभी आदमी नहीं हूं, ऐसी बात नहीं। मुझमें भी लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और मत्सर—सभी हैं।

लेकिन धर्म का लोभ क्या बुरा है? ईमानदारी का लोभ क्या बुरा है? पुण्य का लोभ क्या बुरा है? भाई, मुझे वैसा ही लोभ है। मुझे लोभ है अपने सुनाम का। लड़के की शादी करने के बाद मैंने चाहा था कि मेरा सुनाम हो। लेकिन मेरे उसी सुनाम पर आघात लगा।

मेरे लड़के की शादी के बाद से ही घर पर आने के बाद सुनता कि अपनी लड़की को देखने के लिए समधिन आई थी।

घर पर लड़के की सास के आने पर सभी अतिरिक्त रूप से सावधान रहते।

समधिन बड़े लोगों में से थी। उसके बावजूद जब लड़की की शादी

कर दी है तो उसे ससुराल तो भेजना ही होगा। इकलौती बेटी थी। उसे छोड़कर रहना कितना कष्टप्रद था, यह बात सभी आसानी से समझ सकते हैं।

बहू की मा लेकिन पहले मेरी मां के पास आकर बैठती। वह पूछती—मा, आज आप कैसी हैं?

मां भी बहुत खुश होती। पोते को ऐसी सास मिलेगी, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी।

मां के पास जाते ही मां बताती—जानते हो जहर, आज बहू की मा आई थी। मेरे पास बैठकर वह काफी देर तक बातें करती रही। इतने बड़े घर की बहू है, फिर भी अभिमान उसे छू भी नहीं गया है।

मा की खुशी में ही मेरी खुशी थी। मा ने तो सारी जिन्दगी अभावों और तकलीफों में गुजारी थी। शेष-जीवन में पोते की बहू का मुंह देखने की साध थी, सो वह साध भी पूरी हुई। उसके बाद समधिन इतनी बढ़िया मिलेगी, मा ने इसकी भी कल्पना नहीं की थी। मा की वह साध भी पूरी हुई। यह सब देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। मां ही तो मेरे जीवन का सर्वस्व थी।

बीच-बीच में समधिन मेरी मा के लिए अपने हाथ से बनाई हुई कोई विशेष सब्जी ले आती।

यह बात भी मेरी मां मुझसे बताती। यह कहकर वह मेरी पत्नी से बोलती—बहू, क्या तुम ऐसी सब्जी नहीं बना सकती? ऐसी सब्जी ही जहर पसन्द करता है। अहा, अगर आज मेरे बदन में ताकत रहती तो क्या मेरे जहर को इतनी तकलीफ होती? जहर दिन-भर खटता है और खून-पसीना एक कर रुपये कमाता है और उसीको देखने वाला कोई नहीं। यह मेरी बदकिस्मती है कि अपनी ही आखों से यह भी देखना पड़ रहा है।

सभी कुछ जब इस तरह ही चल रहा था, तभी हठात् खबर आई कि

मधिन वहुत बीमार हो गई थी।

वहू के साथ मेरा लड़का अपनी सास को देखने के लिए गया। लड़के वहू को उसकी मां के पास ही छोड़ दिया और वह खुद घर लौट आया। र आते ही मैंने उससे पूछा—तुम्हारी सास की तबीयत कैसी है ?

लड़के ने कहा—दवा दी है। वैसे कुछ अच्छी ही हैं। कल वड़े डाक्टर को लाकर दिखाऊंगा। देखें, वह क्या कहते हैं !

मैंने पूछा—क्या रोग है ?

लड़के ने कहा—मुझे तो लगता है कि खाने-पीने में लापरवाही वरतने के कारण ही उनकी तबीयत खराव हुई है। हफ्ते में तीन दिन तो वे उपवास करती हैं।

मैं अवाक् रह गया। मैंने पूछा—उपवास? खूब उपवास करती हैं क्या ? आखिर इतने उपवास क्यों करती हैं वे ?

लड़के ने कहा—कौन समझाए ? मैंने मां को बहुत कुछ कहा। लेकिन वे तो सिर्फ यही कहती हैं—मैं हूं एक विधवा औरत। और कितने दिनों तक जिन्दा रहूंगी ? पूजा-पाठ नहीं करने पर परलोक में जाकर भगवान के सामने कौन-सा मुंह दिखाऊंगी ?

लड़का सास से कहता—सो आपका जीवन वड़ा है या आपका यह पूजा-पाठ ? वताइए तो मां ?

लड़के की सास कहती—वेटे, ऐसी वातें मत करो। ऐसी वातें नहीं करनी चाहिए। देवी-देवताओं के वारे में यह सव कहना उचित नहीं। इससे अमंगल होता है वेटे।

मेरा लड़का फिर भी अपनी सास को समझाता—मां, अव से मैं जो डायट-चार्ट वनाकर दूंगा, आप उसी के अनुसार खाना-पीना कीजिएगा।

अपने दामाद की वात टालने का वह साहस कर नहीं पाती। कहती—सो तो इस शरीर के लिए करना ही पड़ेगा। तुम जव कह रहे हो तो उसे

मानकर ही चलना होगा।

लेकिन दो-एक दिनों में ही सारे नियम फिर जहां के तहां धरे रह जाते। हठात् फिर तो घर के पुरोहित महाशय आकर हाजिर होते।

पुरोहित महाशय जो विधान बताते, गृहिणी भी ठीक वही करतीं। मेरे लड़के की सास डाक्टरों की बातों से ज्यादा मूल्य पुरोहितों-पुजारियों की बातों को देतीं। ऐसा कोई भी व्रत नहीं था, जिसका वे पालन नहीं करतीं। ऐसी कोई पूजा नहीं थी, जिसे वे करना नहीं चाहतीं। लक्ष्मी-पूजा से शुरू कर मनसा-पूजा तक सभी पूजा वे अवश्य करतीं।

बहू कहती— मा, तुम इतनी पूजा, इतने व्रत और इतने उपवास क्यों करती हो?

मां कहती—क्या मैं ये व्रत-उपवास अपने लिए करती हूं? मैं ये व्रत-उपवास करती हूं तुम्हारे लिए ही। तुम्हारी ही तो मुझे दिन-रात चिन्ता लगी रहती है।

सब कुछ सुनकर मेरी मां बहू से कहती—अच्छा ही तो है। तुम्हारी मां ने पिछले जन्म में बहुत पुण्य किए थे। इसीलिए तो वह अपनी इच्छा के अनुसार पूजा और व्रत-उपवास कर पा रही है। और मेरी किस्मत देखो, लगातार सोई पड़ी हूं तो सोई हुई ही हूं। पिछले जन्म में न जाने मैंने कितने पाप किए थे, तभी तो मुझे इतने भोग भोगने पड़ रहे हैं।

मा की बीमारी की वजह से बहू सब समय हमारे घर पर रह नहीं पाती। यहां दो दिनों तक रहकर फिर कुछेक दिनों के लिए वह अपने मैके चली जाती।

लड़का रोज एक बार अपनी ससुराल जाता और काफी रात होने पर घर लौटता।

लड़के के घर लौटते ही मैं पूछता—आज तुम्हारी सास की तबीयत कैसी थी?

लड़का कहता—कल तक तो उनकी हालत ठीक थी। लेकिन आज फिर तबीयत बिगड़ गई है।

—क्यों, एकदम तबीयत बिगड़ कैसे गई?

लड़का कहता—कल एकादशी जो थी। निर्जला एकादशी। एकादशी के दिन वे अपने मुंह में दवा भी नहीं डालतीं।

मैं कहता—सो एकादशी के बारे में उन्हें खबर ही क्यों दी जाती है? ये सब खबरें कौन देता है उन्हें?

लड़का कहता—वही पुजारी और पुरोहित खबर देते हैं। वहां एक झुण्ड पण्डितों का है और एक झुण्ड पुरोहितों का। उन सबों को मासिक वृत्ति दी जाती है। प्रत्येक मास उन्हें वृत्ति मिलती है और साथ ही साथ सीधा भी। कोई महीने में पांच सेर चावल पाता है तो कोई तीन सेर। कोई दो साल में एक कम्बल पाता है तो कोई एक साल में दो गमछे। यह सब उसी समय से जारी है, जब कि मेरे श्वसुर साहब जिन्दा थे।

मेरे लड़के की ससुराल खूब विचित्र है भाई। खूब रईस खानदान ज़रूर है, पर सबों का चौका-चूल्हा अलग-अलग है। एक घर में सत्ताइस परिवार हैं। सत्ताइस रसोईघर हैं। किसी घर में रसोइया खाना बना रहा है तो किसी घर में गृहिणी खुद खाना पका रही है। इसीलिए एक-दूसरे के बीच ईर्ष्या भी है! एक घर में मांस पकता है तो और एक घर में बनती है झींगा-मच्छी।

लड़के का रिश्ता करते वक्त इतनी खबर नहीं मिली थी। नामी खानदान था। तीन पीढ़ियां पहले हमारी बहू के पिता जी के दादा जी उस ज़माने में रायबहादुर बनाए गए थे। उनके पिता जी ने ही पहले जोड़ासांकू में वह मकान बनवाया था। उसके बाद से ही उस वंश की उन्नति शुरू हुई।

लड़की देखने के दिन लड़की के चाचा जी आकर खड़े हुए थे।

उन्होंने कहा था—बड़े भैया अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे। उस समय से ही भाभी हमारे पास ही हैं। यह लड़की ही बड़े भैया की एकमात्र सन्तान है।

उसी दिन सुना था कि बहू की मां दिन-भर सिर्फ पूजा-पाठ में ही लीन रहती थी।

लेकिन पूजा-पाठ में वह इतनी लीन रहती थी, यह तो मैंने उस समय कल्पना भी नहीं की थी। मैंने सोचा था कि कभी-कभी ऐसा भी होता है। बहुत-से घरों में ही घर की गृहणियों को दिन-रात भगवान के नेम-धेम में ही व्यस्त देखा है। लेकिन उसकी भी तो एक हद होती है। फिर भी बहू की मां की तरह और किसी को मैंने देखा नहीं।

मा ने सब कुछ सुनकर कहा—मेरी भी इच्छा है कि एक बार जाकर समधिन को देख आऊं। लेकिन जाऊं कैसे?

उस बार मैं बहुत मुश्किल से किसी तरह मां को रोक पाया था।

अचानक जहर कहानी सुनाते-सुनाते एक बार रुका।

मैं शुरू से ही कहानी सुन रहा था। मैंने कहा—यह तुम कितनी कहानियां सुना रहे हो, भाई? तुमने तो कहानी शुरू की थी मालदा की। अब तुम कहानी सुना रहे हो जोड़ासांकू की अपनी समधिन के घर की। इस कहानी के साथ तो मालदा की कहानी का कोई मेल दिखाई नहीं पड़ रहा है।

जहर ने कहा—मेल जरूर है। नहीं तो इतने किस्से बयान क्यों कर रहा हूं? मैं हूं एक एडवोकेट। अट-शट बातें करना हमारे पेशे का दस्तूर नहीं। तब तो जज साहब मुझे तुरन्त रोक देंगे। मैं जो कुछ सुना रहा हूं, तुम चुपचाप सुनते जाओ। तुमने देखा होगा कि हम लोगों की पृथ्वी पर पहाड़ हैं, समुद्र हैं और रेगिस्तान भी। सरसरी नजर से देखने पर ये सभी कितने बेतरतीब दिखाई पड़ते हैं। ऐसा लगता है मानो दुनिया बनाने वाले ने

अपनी मर्ज़ी से इन्हें रख दिया—बिना किसी तारतम्य के, बिना किसी संगति के। लेकिन जब हम इन्हीं बेतरतीब चीज़ों को इस विश्व-ब्रह्मांड के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, तब मालूम होता है कि इनके बीच भी कोई एक सामंजस्य ज़रूर है।

मेरी इस कहानी में भी तुम्हें वह सामंजस्य देखने को मिलेगा, जब तुम इस कहानी का आखिरी अंश सुनोगे। मैं एक एडवोकेट हूं, यह तो मैंने तुम्हें पहले ही बता दिया है। एडवोकेट जब जज के सामने बहस करता है, तब कभी-कभी मालूम होता है कि वह न जाने क्या आलतू-फालतू बातें बके जा रहा है। लेकिन जब बहस पूरी होती है, तब मालूम पड़ता है कि उन आलतू-फालतू बातों में भी उसका एक लक्ष्य स्थिर था। उस समय वे सारी आलतू-फालतू बातें अर्थपूर्ण हो जाती हैं।

मेरी यह कहानी भी ठीक वैसी ही है।

किस्मत का कुछ चक्कर ही ऐसा है कि बचपन से मैंने अब तक जो-जो काम किए हैं, उनमें से प्रत्येक का लाभांश आज पा रहा हूं। अच्छे कामों का अच्छा फ़ल मिला है तो बुरे क़ामों का बुरा। अभी भी पा रहा हूं। परलोक का मुझे इन्तज़ार करना नहीं होगा। और फिर सच्ची बात तो यह है कि अच्छे या बुरे कामों का फल भुगतने के लिए किसी को भी परलोक का इन्तज़ार करना नहीं पड़ता।

मेरे लड़के के श्वसुर साहब थे एक रईस बाप के बेटे। बाप की सम्पत्ति का कोई पार न था। इसीलिए वे जिसे भी सामने पाते, उसकी गर्दन खुद अपने हाथों से उतारते हिचकते नहीं।

एक बार रेस के मैदान में जाकर उन्होंने एक लाख रुपयों का एक चेक काटा था। रेस के मैदान में वही घटना पहली है और आखिरी भी। उसके बाद से ही रेस के मैदान में यह नियम बनाया गया कि एक लाख रुपयों का एक चेक काटा नहीं जा सकता।

उनके पिता जी बड़े हो कड़े मिजाज के आदमी थे।

पहले-पहल तो उन्होंने अपने लड़के को सावधान किया। लेकिन जब उन्होंने देखा कि लड़का अब सुधरने वाला नही है, तब उन्होंने उसे अपने घर मे घुसने ही नही दिया। यह देखकर लड़के ने भी अपने घर पर आना छोड़ दिया। जब तक पिता जी जीवित थे, तब तक वे कभी भी अपने घर पर नही आए।

एक दिन जब अचानक उन्हे अपने पिता के मरने की खबर मिली, तो वे अपने घर मे आ धमके। उनके साथ थी उनकी नवविवाहिता पत्नी।

चाचा, चाची और चचेरे भाई आकर खड़े हुए।

बाप की मौत हो गई थी, लेकिन उन्होंने अपना सिर तक नही मुंड़ाया। श्राद्ध करने की तो बात ही दूर थी। अपनी पत्नी के साथ वे अपने कमरे के भीतर चले गए।

जो लोग मृतक की सम्पत्ति हड़प लेने की ताक में थे, उनकी आशाओं के ऊपर तुषारपात हो गया। लेकिन उससे बहू के पिता का कुछ बनने-बिगड़ने वाला न था। उन्होंने मामला-मुकदमा कर अपनी जायदाद अलग कर ली। उस मुकदमे का फैसला होने मे काफी दिन लगे। जब फैसला हो गया, तब वे अपनी मर्जी के मुताबिक दिन गुजारने लगे।

अपनी पुत्रवधू के मुह से ही मैंने यह सब किस्से सुने थे। बहू के दादा जी कोई वसीयत नही कर गए थे, इसी से जान बची। बहू के पिता जी ने अपना हिस्सा अलग कर भाइयों के घर की तरफ दीवार चिनवा दी। भाइयो के साथ फिर तो सारा सम्पर्क टूट गया।

इस तरह जोड़ासाकू की गांगुली-बाड़ी के सत्ताइस हिस्से हो गए। बहू के पिता जी ने फिर भी अपना रास्ता नही बदला।

उसी समय उस घर मे मेरी पुत्रवधू का जन्म हुआ। जब तक वह छोटी थी, तब तक वह कुछ भी जान नही पाई।

उसके बाद कुछ बड़ी होने पर वह समझ चुकी थी कि वे सब इतने बड़े घर में अलग थे। उनके घर में बहुतेरे रसोईघर थे। जितने रसोईघर थे, उतने ही थे चूल्हे। बाहर से वे एक थे, लेकिन भीतर खाते वक्त सभी अलग-अलग थे।

मेरी पुत्रवधू मुझसे बातें करते हुए कहती—बगल के कमरे में जब मांस-मछली खा रहे होते तो मां मुझे सावधान कर देती—वे सब अभी खा रहे हैं। तुम वहां मत जाना।

वह पूछती—क्यों मां, वहां जाने से क्या होगा?

मां कहती—वहां जाने पर सब तुम्हें लालची कहेंगे। सब कहेंगे कि इस लड़की को कुछ खाने को नहीं मिलता।

इसी वातावरण में लड़की बड़ी हुई। फिर वह स्कूल में दाखिल की गई। उसे याद है कि तब से ही मां सिर्फ पूजा-पाठ में व्यस्त रहती। घर पर कोई न कोई पूजा रोज होती। किसी दिन लक्ष्मी-पूजा, किसी दिन काली-पूजा, तो किसी दिन शिव-पूजा। पूजा के मामले में किसी दिन नागा नहीं होता।

और प्रायः ही मां उपवास करती।

लड़की पूछ बैठती—यह क्या मां, तुमने आज खाया नहीं?

मां कहती—आज मुझे खाना नहीं है। आज अशोकषष्ठी का व्रत जो है! क्या तुम्हें मालूम नहीं?

लड़की पूछती—इतना व्रत-उपवास करने से क्या होगा मां? इतनी पूजा करने से क्या फायदा होगा?

मां कहती—होगा और क्या, भला होगा—मंगल होगा। तुम लोगों के भले के लिए ही तो यह सब करती हूं। इससे तुम्हारा और तुम्हारे पिता जी का मंगल होगा बेटी।

लड़की मां से पूछती—तुम तो इतना पूजा-पाठ करती हो। लेकिन

और किसी की मा तो इतनी पूजा नहीं करती, इतने उपवास नहीं करती।

मां कहती—वे सब पूजा नही करते हैं तो न सही। पूजा नही करने पर भगवान उनसे नाराज हो जाएगे। और मैं पूजा करती हूं तो देखना तुम्हारा कितना मंगल होगा।

लड़की पूछती—मां, मेरा क्या मगल होगा?

मां कहती—जब तुम सयानी हो जाओगी तब तुम देखोगी कि तुम्हें कितना सुन्दर दुल्हा मिलेगा। कितना प्यारा बच्चा होगा तुम्हारा। तुम्हारा सभी कुछ शुभ होगा, मंगलमय होगा। लक्ष्मी तुम्हारे घर पर हाथ जोड़े खड़ी रहेगी।

लड़की सभी कुछ सुनती। फिर पूछती—शायद तुम्हारी मां भी खूब पूजा-पाठ किया करती थी! इसीलिए तो तुम्हारी शादी इस घर मे हुई है···।

मा कहती—हा, तभी तो तुम्हारी-जैसी रानी बिटिया मिली है मुझे। तुम सचमुच रानी-बिटिया हो, सोना-बिटिया···।

यह कहकर मा अपनी लड़की को दोनों हाथों से पकड़कर उसका माथा चूम लेती। प्यार-मनुहार करती···।

लेकिन पिता जी को यह सब पसन्द नहीं था।

पिता जी कहते—इस घर में यह सब क्या हो रहा है?

मां कहती—आप कुछ भी फिक्र न करें। देवी-देवता के विषय में आपको कुछ भी कहने की जरूरत नहीं।

पिता जी कहते—झूठ-मूठ इन पुरोहितों और पण्डितों को इतना खिला-पिलाकर रुपये देने मे क्या लाभ है? वे सब तो धोखेबाज और पाखंडी हैं।

मां कहती—छिः, ऐसी बातें नही किया करते। भगवान नाराज हो जाएगे। इतनी पूजा की है, तभी तो आप जैसा पति पाया है मैंने। इसकी

जैसी प्यारी कन्या मिली है मुझे।

पिता जी कहते—ये सब बातें शायद उन धोखेबाज़ों ने ही तुम्हें सिखलाई हैं। तुम तो जानती नहीं कि वे सब क्या हैं! केवल इस तरह की बातें बनाकर वे सब तुम से रुपये ऐंठने की फिराक में रहते हैं।

और सचमुच ही मां की पूजा की क्या धूम थी! उनके दान-ध्यान का का क्या कहना!!

किसी को अर्थदान दिया जा रहा है तो किसी को स्वर्ण-दान और किसी को भूमि-दान। मां के दान-धर्म का कोई अन्त था ही नहीं। और उसके साथ थी सेवा। सेवा यानी शानदार भोजन। सब की मासिक वृत्ति बंधी हुई थी। किसी को महीने में दस रुपये मिलते तो किसी को सौ रुपये। पिता जी के पास रुपयों की कमी न थी। पिता जी के पास पैतृक सम्पत्ति तो थी ही; साथ ही दादा जी के पास से मिले हुए मकानों से किराये के भी हज़ारों रुपये आते। उसके साथ ही थे सोने और हीरे-मोती के गहने। मां के पास कितने गहने थे, इसका कोई हिसाब न था। मां को जेवर जमा करने की आदत थी। ज़िन्दगी-भर वह जेवर जमा करती रहीं।

इसलिए मां भी धरम-करम के लिए खुले हाथ से ख़र्च करती। परिवार में नाममात्र के तीन आदमी थे। तीन आदमियों के खाने-पीने के लिए आखिर रुपये ही कितने खर्च होते! अधिक रुपये खर्च होते पूजा-पाठ और यज्ञ-हवन में ही।

पिता जी जैसे नास्तिक थे, मां ठीक उनके विपरीत थी परम आस्तिक। इसलिए दिन-भर पिता जी कहां रहते, इसका कुछ ठीक नहीं था।

एक-एक दिन आधी रात को लड़की की नींद टूट जाती। वह जागकर हैरत से देखती कि उसकी मां भगवान की तस्वीर के सामने बैठी-बैठी एकाग्र भाव से जप कर रही होती।

लड़की मा को पुकारती—मां'''।

मा अचानक अपनी बेटी की आवाज सुनकर उसके पास चली आती। कहती—तुम अभी तक सोई नहीं बेटी? अभी तक जाग रही हो? सो जाओ। सो जाओ मेरी रानी चिड़िया, काफी रात हो चुकी है।

लड़की पूछती—तुम क्यों जाग रही हो मां? क्या तुम सोओगी नहीं?

मां कहती—मेरी फिक्र मत करो। तुम सो जाओ। यह लो, मैं भी तुम्हारे पास सोती हूं।

यह कहकर अपनी बेटी के साथ लिपटकर मां लेट जाती। जब तक लड़की को नींद नहीं आती, तब तक वह वहीं लेटी रहती। उसके बाद जब काफी रात को पिता जी घर लौटते, तो मां घर का दरवाजा खोल देती।

पिता जी मां से कहते—क्या हुआ? तुम अब तक जगी हुई हो?

मा कहती—आप घर लौटे नहीं, फिर मैं कैसे सोती? आपके लौटे बिना क्या मुझे नींद आ सकती है?

यह कहकर मा पिता जी का खाना परोस देती।

कहती—लीजिए, भोजन कर लीजिए। मैंने खाना ढककर रख दिया था।

पिता जी प्रायः कहते—मैं नहीं खाऊंगा। मैं खाकर आया हूं।

मा कहती—आप खाएंगे नहीं?

पिता जी कहते—तुमने खा लिया है न?

मां कहती—आपने अभी तक खाया नहीं। फिर आपसे पहले मैं कैसे खा लूंगी, यह बात आपके मन में आई ही कैसे?

पिता जी कहते—तुम तो मुझे भारी मुसीबत में डाल देती हो। तुम घर पर रहती हो। समय पर खाना क्यों नहीं खा लेती? मैं कब कहां रहता हूं, इसका कोई ठिकाना है क्या?

मां कहती—कुछ जल्दी भी तो घर आ सकते हैं। रात के दस बजे

तक···।

पिता जी कहते—तुम ठहरी औरत की जात। दिन-भर घर में पड़ी रहती हो, तुम क्या समझोगी? मुझे कितना काम रहता है, वह तुम नहीं जानती।

मां कहती—ऐसा क्या काम लगा रहता है? आपके जितने काम हैं, वह सब तो आपके दफ्तर के लोग करते हैं।

पिता जी पूछते—क्या मेरे मामले-मुकदमे नहीं हैं?

मां कहती—सो आपके वकील-अटर्नी भी तो हैं। वे सभी तो मामले-मुकदमे देखते हैं। इसी के लिए तो उन्हें मोटी तनख्वाहें दी जाती हैं।

पिता जी कहते—वकील-अटर्नी के ऊपर ही सारा भार अगर छोड़ दिया जाए तो फिर हो गई छुट्टी। वे सब बारह बजाकर रख देंगे। तुम तो उन लोगों को पहचानती नहीं। वे सब तो रहते हैं सिर्फ रुपये बनाने के चक्कर में।

मां कहती—सो ज़मीन-जायदाद रहने पर मामला-मुकदमा तो लगा ही रहेगा।

पिता जी कहते—मामला-मुकदमा नहीं करने पर जायदाद भी हाथ से निकल जाएगी। तुम तो हम लोगों के आत्मीय-स्वजनों को पहचानती नहीं। जिस दिन से मैं तुम्हें ब्याह कर घर लाया हूं, उस दिन से ही वे मुझसे खार खाए बैठे हैं। उन्होंने सोचा था कि मैं कभी भी घर नहीं लौटूंगा। वे ही सारी जायदाद के मालिक बनेंगे···। मैंने उन लोगों के मनसूबों पर पानी फेर दिया है। खार तो खाएंगे ही।

मां कहती—अगर ज़मीन-जायदाद के कारण ही वे हमसे इतने नाराज़ हैं तो ज़मीन-जायदाद को त्याग दीजिए। इतनी ज़मीन-जायदाद लेकर हम क्या करेंगे? उसके बजाय तो जायदाद का कुछ कम रहना ही अच्छा है, उससे आपका स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा और इतनी रात आपको घर लौटना

पिता जी कभी कहते—जमीन-जायदाद का झंझट-झमेला छोड़कर जिस तरफ दो निगाहें हों, उधर ही चला जाऊंगा। वकील-पेशकार और मुख्तार-मुहरी से अब पार नहीं पा रहा हूं। बिलकुल मार डाला है इन सबों ने…।

लेकिन दूसरे ही क्षण पिता जी फिर बिलकुल बदल जाते।

पिता जी कहते—आज मैं घर पर खाना नहीं खाऊंगा। मुझे अभी तुरन्त ही बाहर निकलना होगा।

मां पूछती—कहां?

पिता जी कहते—आज हाई कोर्ट में पार्टीशन वाले केस का फैसला सुनाया जाएगा। इसीलिए वकील को उसके घर से साथ लेकर जाना होगा। दिन के दस बजे ही…।

मां कहती—सो आपको पहले बताना चाहिए था। पहले ही बता रखने पर मैं रसोइये से कहकर खाना तैयार करवा लेती।

कहां का मामला है—यह सब मां कुछ भी नहीं जानती। वह साथ ही साथ पण्डित जी को बुलवाती।

पण्डित जी दौड़े आते।

कहते—क्यों मां, कैसे याद किया है?

मां कहती—आपको अभी ही हवन की व्यवस्था करनी होगी।

पण्डित जी हैरान रह जाते। पूछते—क्या हुआ है मां?

मां कहती—भारी विपत्ति में पड़ी हूं, पण्डित जी। आज के ही दिन यज्ञ करना होगा। आज ही हाई कोर्ट में फैसला सुनाया जाएगा। आप कुछ उपाय कर मेरी रक्षा कीजिए।

मां पूछती—लगभग कितने रुपये लगेंगे? पांच सौ रुपयों में अनुष्ठान पूरा हो जाएगा न?

पण्डित जी कहते—एक बार इतने रुपये ही दीजिए। बाद में जरूर

पड़ने पर मैं फिर आप से मांग लूंगा।

साथ ही साथ आलमारी खोलकर मां पांच सौ रुपये निकालती और पण्डित जी के हाथों में रख देती।

और फिर उसके बाद घर पर पूजा-पाठ का दौर शुरू हो जाता। धूप-धूने की गंध से सारा घर महक उठता। कांसे के घंटे की आवाज से घर-भर गूंज उठता। सत्ताइस हिस्सेदार समझ जाते कि हमारे घर पर कोई बड़ी पूजा आयोजित हो रही है।

और फिर सिर्फ यज्ञ हो, यह बात नहीं। उसके साथ ही होता [illegible]-भोजन और उसके बाद मोटी दक्षिणाएं।

एक दिन में ही मां के हजार रुपये खर्च हो जाते।

रात में घर लौटने पर पिता जी मां से पूछते—यह क्या, [illegible] फिर तुम्हारा कोई व्रत था क्या?

उस घर में इस तरह प्रायः ही होता। इसमें ताज्जुब की कोई [illegible] थी। पिता जी सिर्फ यह जानना चाहते थे कि [illegible] गया है!

मां ने लेकिन उस बात का जवाब नहीं दिया।

मां ने पूछा—हाई कोर्ट में आपके मानने का [illegible] क्या आज? आप मुकदमा जीत गए हैं न?

पिता जी ने पूछा—इसीलिए लगता है कि तुमने [illegible] है?

मां ने कहा—पहले आप मुझे मेरी [illegible] आपकी बात का जवाब दूंगी।

पिता जी ने कहा—डिग्री [illegible] हुई है।

—डिग्री मानें?

पिता जी ने कहा—यानी [illegible]

मां दोनों हाथ जोड़कर अदृश्य देवता के प्रति अपना नमन ज्ञापित करती और कहती—मैं जानती थी कि आप जरूर जीतेंगे।

पिता जी हंसने लगते। कहते—सो तो मैंने समझ लिया। लेकिन कितने रुपये खर्च हुए हैं, यह भी तो सुनूं।

मां कहती—आप सिर्फ खर्च की बात करते हैं। लेकिन आज जो आपकी जीत हुई है, वह क्या आपके वकील के कारण हुई है?

पिता जी हंसकर कहते—तो क्या तुम सोचती हो कि तुम्हारे गुरुदेव के कारण मेरी जीत हुई है?

मां कहती—हां-हां, गुरुदेव के कारण ही आपकी जीत हुई है। गुरुदेव ने हवन-पूजन किया, इसीलिए तो आपकी विपत्ति टल गई।

पिता जी बोले—सो रुपये कितने खर्च हो गए, यह तो बताओ न!

मां बोली—नहीं जी, नहीं। आपके ज़्यादा रुपये मैंने खर्च नहीं किए हैं। सब मिलाकर हजार रुपये भी नहीं। आप रुपयों की इतनी फिक्र क्यों करते हैं? आपने जो यह मामला जीत लिया, इसमें आपको कितने हज़ार रुपयों का लाभ हो गया—बोलिए तो!

मां के तर्क के सामने पिता जी को आखिरकार हार माननी होती।

मां हमारे गांगुली परिवार के किसी भी सदस्य को फूटी आंखों भी सुहाती न थी। मैंने एक बार मां से पूछा था—मां, तुम घर में किसी के साथ भी मिलती-जुलती नहीं, क्यों?

मां हंसती। कहती—कौन कहता है कि मैं घर के लोगों से मिलती-जुलती नहीं? ये भी तो कोई मेरे पास नहीं आते हैं।

मैं पूछती—क्यों नहीं आते मां?

मां कहती—क्यों नहीं आते, बताऊं क्या? तुम्हारे पिता ने अपने भाई-बन्धुओं से अनुमति लिए बिना ही मेरे साथ शादी कर ली थी, इसीलिए वे बहुत नाराज़ हैं। और फिर मैं गरीब घर की बेटी जो हूं।

रुपयों की तंगी क्या चीज है, इसे तुम नहीं समझ सकती। लेकिन मेरी रग-रग ने इसे समझा है री। इसीलिए तो मैं दिन-रात सिर्फ भगवान को याद करती हूं। इसीलिए तो मैं दिन-रात पूजा करती हूं, व्रत करती हूं और उपवास करती हूं।

मा की ये सब बातें बाहर का कोई भी आदमी नहीं जानता। मा भगवान की पूजा-आराधना में चाहे जितना खर्च कर डालती, परन्तु वैसे वह खर्च करने के मामले में बहुत कजूस थी।

पिता जी बल्कि मां से कहते—क्यों, तुमने तो मुझसे रुपये मांगे नहीं। इस बार तो घर के खर्च के लिए तुमने रुपये लिए नहीं?

मां कहती—जब मुझे जरूरत पड़ेगी, मैं आपसे रुपये माग लूंगी। इस समय तो मेरे पास काफी रुपये हैं।

पिता जी अवाक् रह जाते। पिता जी कहते—रुपये तुम्हारे पास कैसे बचे हुए हैं? तुम्हें तो मैंने अधिक रुपये दिए नहीं थे।

मा कहती—मैं जो बड़ी किफायत से रुपये खर्च करती हूं।

पिता जी कहते—देखू, तुम्हारी कैश-बक्स देखू तो! देखू, तुम्हारे पास कितने रुपये हैं?

एक दिन पिता जी ने जबर्दस्ती मां की कैश-बक्स देख डाली। उन्होंने देखा कि मा की कैश-बक्स में रुपयों के बण्डल भरे पड़े थे।

पिता जी तो बस चमक उठे। उन्होंने कहा—यह क्या? इतने रुपये तुमने कहां से पाए? चोरी तो नहीं की तुमने?

मा कहती—हां जी, ये रुपये मैंने आपकी जेब से चुराए हैं।

और क्या सिर्फ रुपये? कितनी ही चीजें मा की अलमारी में पड़ी रहती, इसका कोई ठिकाना न था। किसी भी दिन घर मे या घर के बाहर जाते वक्त भी मा को कभी अधिक गहने पहने मैंने देखा नहीं।

और फिर मां के पास कितने गहने थे, सो मैं खुद देख चुकी हूं।

आलमारी खोलते वक्त मैंने कितनी ही बार उचक-उचक कर देखा है कि कितनी बेशकीमती साड़ियां थीं और कितने बढ़िया साये थे, ब्लाउज़ थे। इन सबों की कोई गिनती न थी।

□

मेरी मां यह सब सुनकर अवाक् रह जाती।

कहती—तुम्हारी मां पिछले जन्म में बहुत पुण्य करके आई है, बहू। भगवान उसे इतना कष्ट क्यों दे रहा है? भगवान के मन में क्या है, कौन जाने!

बहू कहती—मैं भी तो यही कहती हूं कि मां इतना कष्ट क्यों पा रही है। मां ने जीवन में कभी किसी को ठगा नहीं, जीवन में कभी किसी का बुरा चाहा नहीं। मां ने तो ज़िन्दगी भर, जितनी भी तरह के व्रत और अनुष्ठान हो सकते हैं, किए हैं। पंचांग में जो कुछ नियम लिखे हैं, मां ने उनका अक्षरश: पालन किया है। मां तो इसीसे अब कहती है—पिछले जन्म में मैंने शायद बहुत पाप किए थे, इसीलिए इस जन्म में मुझे इतना कष्ट भोगना पड़ रहा है।

जीवन के शेष-काल में मेरी समधिन ने भाई कितने कष्ट झेले थे, यह सुनकर तुम चौंक उठोगे। मेरे लड़के के श्वसुर ने वाणिज्य-व्यवसाय के द्वारा प्रचुर धन अर्जित किया था। लेकिन उनकी मृत्यु के बाद मेरी समधिन बिलकुल संन्यासिनी की तरह दिन बिताने लगी।

किन्तु उन्होंने बीमारी के कारण बहुत तकलीफ उठाई आखिर तक।

अपने पुत्र से मैंने पूछा था—कैसे डाक्टर हो तुम लोग? एक रोगी को चंगा नहीं कर पा रहे हो? रोग दूर होने में क्या इतने दिन लगते हैं कभी? उनकी तो उम्र भी कोई अधिक नहीं है।

मेरे लड़के ने पहले बात प्रकट नही की। फिर सिर्फ मुझसे उसने चुपचाप कहा—पिता जी, यह रोग कभी मिटेगा नही।

मैं अपने लड़के की बात सुनकर स्तब्ध रह गया।

मैंने पूछा—क्यो नही मिटेगा वह रोग?

लड़के ने कहा—उनके पेट मे कैंसर हो गया है।

लड़के की बात सुनकर मैं चकित रह गया। जो महिला भगवान का इतना ध्यान करती है, इतने व्रत और उपवास करती है और गरीब की बेटी होते हुए भी जिसने कभी किसी को प्रवंचित नही किया; उसीके भाग्य में इतनी तकलीफें लिखी हैं।

लड़के ने कहा—यह सब मुख्यत अनियमित आहार के कारण ही हुआ है। अपने शरीर की तरफ तो उन्होने कभी भी ध्यान नही दिया। श्वसुर साहब घर लौटते-लौटते रात के एक-दो बजाते। इसीलिए सास को भी इतनी रात तक भूखा रहना पडता।

अपने लड़के के मुंह से समधिन के असल रोग का नाम सुनकर मैं समझ गया कि वह रोग लाइलाज था। मुझे बडी चिन्ता हुई। मेरी पत्नी ने एक दिन मुझसे पूछा—आप इन दिनो इतने गभीर क्यों दिखाई पड़ रहे हैं? क्या हुआ है आपको? हर समय देखती हूं कि आप न जाने किस सोच में डूबे रहते हैं।

मैंने झूठ-मूठ का एक बहाना बना दिया।

मैंने कहा—एक पेचीदा मामले की वजह से मैं बडा चिन्तित हूं। बहुत ही सीरियस केस है।

हमारे पेशे में एक यही सुविधा है कि अपनी किसी समस्या को हम लोग दूसरे की समस्या बताकर अपनी जान बचा सकते हैं। इसीलिए हम लोगो के सम्बन्ध में लोगो की धारणा भी इतनी खराब है। हम लोग बहुत कुछ बहुरूपियों-जैसे होते हैं। पल-पल, छिन-छिन हमारे रग बदलते हैं।

जज के सामने हम कुछ होते हैं, मुवक्किलों के सामने कुछ और ही। इसी तरह अपनी पत्नी के सामने हम कुछ होते हैं—पास-पड़ोस के लोगों के सामने कुछ और ही। हमारा असली रूप क्या है, यह तो हम लोग भी खुद नहीं समझ पाते।

यह कहते-कहते जहर रुका।

☐

इतनी देर तक मैं जहर की बातें सुन रहा था। जहर के रुकते ही मैंने पूछा—उसके बाद?

जहर ने कहा—'उसके बाद' कुछ ज़रूर ही है, पर अभी से तुम यह जानने की फिक्र में मत पड़ो। उत्सुकता अच्छी चीज है, लेकिन अधिक उत्सुकता ठीक नहीं। जज के सामने हम लोग जिरह करते हैं। लेकिन जिरह करने के आरंभ में ही हम असल प्वाइण्ट की चर्चा नहीं करते। वह तो हम लोगों का तुरुप का पत्ता है। उसे हम आखिरी वक्त के लिए रख छोड़ते हैं···।

मैंने कहा—तो फिर इस बार भाई तुरुप का पत्ता फेंको। और इन्तज़ार नहीं कर सकता···। अब तो तुम्हारी कहानी खत्म होने को आई है न?

जहर ने कहा—हां, कहानी खत्म होने वाली ज़रूर है। लेकिन रेल जब किसी स्टेशन पर रुकती है तो एकाएक तो नहीं रुक जाती। रुकने के पहले गाड़ी की गति धीमी होती जाती है और तब गाड़ी रुकती है। मेरी यह कहानी भी वैसी ही है। बहुत कुछ मेरी समधिन के कैंसर की तरह। वह रोग जब किसी को दबोचता है तो ऑक्टोपस की तरह धीरे-धीरे। पहले तो यह अन्दाज़ ही नहीं लगता कि अब रोग ने धर दबोचा है। जैसे-

जैसे दिन बीतते हैं, वैसे-वैसे रोग का प्रकोप बढ़ता जाता है। बढ़ते-बढ़ते रोग अपनी चरम अवस्था में आ जाता है।

एक समय डाक्टरों ने कहा—रोगी को अस्पताल में भर्ती करना होगा।

लेकिन ममधिन बोली—मैं अस्पताल नहीं जाऊंगी।

लड़के ने पूछा—लेकिन क्या घर पर बढ़िया इलाज हो सकता है? कभी यह सम्भव है?

ममधिन बोली—लेकिन मैं अपने पति और श्वसुर का घर छोड़कर और कहीं भी नहीं जाऊंगी। मरना होगा तो यहीं मरूंगी।

लड़की बोली—मां, तुम नासमझी मत करो। डाक्टर बाबू तुम्हारे भले के लिए ही कह रहे हैं। तुम आपत्ति क्यों कर रही हो?

मां ने सिर हिलाया। कहने लगी—अरे, तुम समझोगी नहीं। अस्पताल में जाने पर मुझे कोई भी पूजा-पाठ नहीं करने देगा। वहां ठाकुर जी को कौन भोग लगाएगा? ठाकुर जी को भोग लगाए बिना मैं मुंह में एक दाना भी नहीं रख सकती। अस्पताल में यह सब कैसे होगा?

लड़की कहती—तो फिर तुम अपने ठाकुर जी को भी अस्पताल में ले चलो।

मां कहती—दुर, ठाकुर जी को कोई उस गन्दगी में ले जाता है क्या भला? वहां ठाकुर जी पवित्र रह पाएंगे क्या?

जिसकी जहां और जिस समय मौत लिखी होती है, वहीं और उसी समय उसे मरना पड़ता है। किसी भी व्यक्ति में यह क्षमता नहीं होती कि वह इसे टाल सके। इसीलिए जब एक दिन मेरे लड़के ने आकर खबर दी कि उसकी सास की मृत्यु हो गई है, तब मैं अधिक विचलित नहीं हुआ। जहां मृत्यु तय ही हो, वहां ताज्जुब करने की बात ही क्या!

और फिर उसके अलावा जिसने जिस स्टेशन की टिकट कटाई है,

उसे उसी स्टेशन पर उतरना होगा। उसके पहले के स्टेशन पर भी नहीं और उसके बाद के स्टेशन पर भी नहीं···। यदि यात्री अपने नियत स्टेशन के परे किसी स्टेशन पर उतरेगा तो उसे बिना-टिकट यात्रा करने के अभियोग में टिकट-चेकर के पास जुर्माना देना पड़ेगा या बेइज़्ज़ती का सामना करना होगा।

जो हो, एक वकील के मुंह से ये सब बातें शोभा नहीं देतीं। तुम लोगों के मुंह से ही ये बातें शोभा पा सकती हैं। फिर भी इसीलिए कहता हूं कि न तो यह अदालत है और न ही मैं वकील। यहां मैं वकील नहीं, बस एक आदमी हूं। मामूली-सा आदमी। तुम्हारा खास दोस्त।

बड़े खानदान की गृहिणी की मृत्यु ! उनके श्राद्ध-कर्म आदि में कितना झमेला हुआ, यह कहकर मैं तुम्हें और बोर करना नहीं चाहता।

और फिर शुरू हुआ हिस्सेदारों का आपसी झगड़ा। सत्ताइस रसोई-घरों में एक रसोई-घर था हमारी समधिन का। उस रसोईघर का दर-वाज़ा बन्द हो गया। वहां अब और किसी भी दिन चूल्हा नहीं जलेगा।

खूब धूम-धाम से श्राद्ध हुआ। कहीं भी कोई कृपणता नहीं की मेरे पुत्र और पुत्र-वधु ने।

आखिरकार जायदाद का सवाल उठा।

भाई, यहीं मेरी कहानी शुरू हो गई। यह है मेरी कहानी का बिलकुल आखिरी हिस्सा। इसीलिए तुम इसे कहानी का आरम्भ भी कह सकते हो और कहानी का अन्त भी। या फिर इसे कहानी की शुरुआत ही समझो। जीवन के आदि से अन्त तक यह जो मानव की जीवन-परिक्रमा है, वह परिक्रमा आदि से शुरू होकर फिर उसी आदि में शेष हो जाती है।

मैं एडवोकेट हूं न, इसलिए मुझे खुद लड़ाई के मैदान में आना पड़ा। और फिर एडवोकेट भी हूं तो हाई कोर्ट का। हिस्सेदारों ने तरह-तरह का छल-प्रपंच कर मेरे लड़के की जायदाद हथियानी चाही। लेकिन मैंने

आखिरी दिनों में होने वाले दुर्दिनों की आशंका से ही शायद आदमी को जमा करना पड़ता है। लेकिन इस तरह जमा करने की प्रवृत्ति भी मैंने जीवन में और किसी की देखी नहीं। वकील की हैसियत से मुझे बहुत-से वसीयतनामों का प्रोबेट लेना पड़ा है। लेकिन पहले कभी भी मुझे ऐसा अनुभव नहीं हुआ भाई।

उसके बाद बैंक…। बैंक की पासबुक आलमारी में ही थी। कोर्ट का आर्डर और 'सक्सेशन सर्टीफिकेट' दिखाकर रुपये निकाले गए।

उसके बाद बारी आई लॉकर की। लॉकर की चाबी भी आलमारी में थी। उसी चाबी से लॉकर खोला गया। लॉकर के भीतर झांकते ही मेरी आंखें चौंधिया गईं। एक औरत के पास कितने प्रकार के गहने हो सकते हैं, यह मैंने तब देखा। और क्या सिर्फ एक लॉकर था? सभी बैंकों के लॉकरों से ढेर के ढेर रुपये-पैसे निकले। मैंने खुद उन गहनों की एक फेहरिस्त तैयार की। सोने-चांदी और हीरे-मोतियों के कितने प्रकार के गहने थे, उन सबों का मैं नाम भी नहीं जानता।

मैंने बहू से पूछा—तुम्हारी मां के पास जो इतने गहने थे, सो वे तुमसे बताकर नहीं गईं?

बहू ने कहा—मैंने तो पहले ही आपसे बताया था कि मां को जमा करने का बड़ा नशा था। मैं बचपन में जिन खिलौनों से खेला करती थी, उन्हें भी मां फेंक नहीं पाती। सब कुछ जमाकर रख देती। मां बहुत गरीब घर से आई थी, शायद इसीलिए उनकी ऐसी आदत हो गई थी।

बहू ने फिर कहा—पिता जी ने शादी के समय अपने भाइयों की सम्मति नहीं ली थी, इसीलिए उन्होंने मेरे माता-पिता का बहिष्कार किया था। उसी दुःख से मां भी किसी के साथ बोलती नहीं थी, किसी के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखती थी। और फिर घर की एक ही छत के नीचे सब रहा करते थे।

मैंने कहा—तब तो तुम्हारी मां ने जिन्दगी-भर बहुत तकलीफें उठाई थीं।

बहू ने कहा—इसीलिए तो मेरी मां सिर्फ पूजा-पाठ मे डूबी रहती थी। भाइयों के साथ एक घर में रहने पर भी किसी के साथ उसकी बात-चीत न थी, यह मां को अच्छा नही लगता था। और फिर घर में तो दिन-भर मां को कोई काम न था। मैं भी अपने स्कूल मे चली जाती और पिता जी चले जाते अपने दफ्तर में। इसीलिए वह अकेली बैठी रहकर करती भी तो क्या करती? सिर्फ गुरुदेव, ठाकुर और पूजा···।

सात वर्षों के बाद उस सम्पत्ति का हिसाब करते-करते मैं बार-बार सोच रहा था कि मनुष्य इतनी सम्पत्ति क्यो जमा करता है? किसके लिए? किस स्वार्थ की पूर्ति के लिए? मैं ठहरा वकील···। कोर्ट-कचहरी मे जब ये सब मामले आते हैं तो खुद मुझे सुनते-सुनते अपने पेशे से नफरत होने लगती है! बीच-बीच मे जिरह के वक्त मेरी इच्छा होती है कि अपने कानों को बन्द कर लूं···। इसीलिए तो कहता हूं कि पृथ्वी पर कितने प्रकार के आदमी हैं, कितने प्रकार के चरित्र हैं—यह सब मैंने अपनी आखों से देखा है भाई।

लेकिन आज तक मैंने अपनी समधिन जैसी औरत नही देखी।

मैंने पूछा—क्यों?

जहर कहने लगा—वही बात तो अब बताने जा रहा हूं। लॉकर से जो गहने निकले थे, उसकी फेहरिस्त मैंने कल तैयार की थी। मेरे कमरे मे उस समय कोई भी नही था। अकेला बैठा-बैठा मैं फेहरिस्त तैयार कर रहा था कि अकस्मात् एक काण्ड हो गया।

मैंने पूछा—काण्ड? कैसा काण्ड?

जहर ने कहा—क्या तुम्हे याद है कि शुरू में ही मैंने तुम्हें बतलाया था कि मालदा शहर में एक लड़की ने किस तरह मुझे ब्लैकमेल किया

था—अर्थात् मुझे ठगा था। उसने मुझसे मेरी अंगूठी छीन ली थी!

मैंने कहा—हां, वही आध भरी सोने की अंगूठी।

जहर ने कहा—हां, जो मेरे पिता जी ने मेरी जनेऊ के समय तैयार करवा कर दी थी। अंगूठी पर मेरे नाम का प्रथम अक्षर 'जे' खुदा हुआ था। वही अगूठी उन गहनों के बीच मिली। मैं तो भाई भारी ताज्जुब में पड़ गया। कितने साल पहले की घटना है वह। उस अंगूठी के कारण मुझे अपनी मां से कितनी खरी-खोटी बातें सुननी पड़ी थीं। इतने दिनों के बाद वह अंगूठी मेरे लड़के की सास के गहनों के बक्से में पड़ी मिली!

मैं भी अवाक् रह गया। मैंने पूछा—क्या वह हू ब हू वही अंगूठी थी?

जहर ने कहा—हां, हू ब हू वही अगूठी। और कोई दूसरी औरत होती तो शायद उसे तुड़वा कर दूसरी डिज़ाइन का गहना बनवा लेती। किन्तु उनका तो सारी चीज़ें जमा करने का स्वभाव था, इसीलिए उस अंगूठी को भी उन्होंने जमा कर रखा था।

मैंने पूछा—लेकिन आखिरकार तुम्हारे समधी के साथ उनकी शादी किस तरह हुई थी?

जहर ने कहा—सो तो मैं जानता नहीं भाई। हो सकता है कि मेरी तरह ही मेरे समधी को भी उन्होंने ब्लैकमेल किया हो और फिर शादी के बन्धन में जकड़ डाला हो। असल में हुआ क्या था, यह तो जानने का अब कोई भी उपाय नहीं भाई। उसी वजह से शायद भाइयों ने उन्हें बहिष्कृत कर दिया था।

मैंने पूछा—उसके बाद तुमने उस अंगूठी का क्या किया?

जहर ने कहा—और क्या करूंगा बताओ? मां से भी मैं यह कह नहीं सका कि देखो मां, जिस अंगूठी के कारण तुमने मुझ पर इतनी नाराज़गी दिखाई थी—वह अंगूठी अब मिल गई है। लो, यह देखो अंगूठी। इसका कारण यह कि मां भी कभी की परलोक सिधार चुकी है।

मैंने पूछा—तुम्हारे लड़के और बहू ने क्या कहा ?

जहर ने कहा—वे लोग तो कोई इस घटना के विषय में जानते नहीं। मैंने तो मीने की एक अगूठी पाई है, यह वात मैंने किसी से कही ही नहीं। गहनों की फेहरिस्त में उस अंगूठी का जिक्र मैंने नही किया है। मैं नहीं जानता कि वह अगूठी लेकर मैं अब क्या करूंगा ! तुमने जब कल मुझे यह बताया कि पूजा-विशेषाक के लिए उपन्यास लिखने के लिए तुम कोई प्लाट खोज नही पा रहे हो, तब मैंने कहा था कि मैं तुम्हें एक प्लाट दूंगा। लेकिन तब तक भी मैं नहीं जानता था कि खुद मेरे घर पर एक प्लाट मौजूद है।

उसके बाद जहर ने जेब से एक अगूठी निकाल कर मेरी तरफ बढ़ा दी।

कहने लगा—यह देखो भाई, वही अंगूठी है।

मैंने अगूठी देखी। जहर ने शायद सोचा कि मैं अगूठी देख रहा था। लेकिन सच तो यह है कि उस समय मैंने उस अंगूठी में मानो विश्वरूप के दर्शन पा लिए। गीता में श्रीकृष्ण ने जिस तरह अर्जुन को विश्वरूप-दर्शन कराया था, उसी तरह जहर ने भी मुझे अगूठी नहीं दिखाई थी, बल्कि विश्वरूप-दर्शन कराया था।